'जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास
कापड़ियाने मुद्रित किया।

भूमिका ।

जैन धर्मशास्त्रोंमें अहिंसाका क्या स्वरूप है इसको बहुत कम भाई जानते हैं इससे सर्वसाधारणमें यह बात फैल गई है कि जैन लोग इतनी अधिक अहिंसाको मानते हैं कि ये लोग देशका राज्य कभी कर नहीं सक्ते, अपनी व देशकी रक्षा भी नहीं कर सक्ते, युद्ध नहीं कर सक्ते, देशका प्रबन्ध नहीं कर सक्ते। ये लोग स्वयं कायर या डरपोक हैं व इनके गुरुओंने अहिंसाका उपदेश देकर भारतवर्षको कायर या डरपोक बना दिया। तथा विदेशियोंने इसीलिये भारतको ले लिया। इस मिथ्या किम्बदन्तियोंको मिटानेकी बड़ी भारी आवश्यक्ता है।

सर्वसाधारण जनताको वह इतिहास विदित नहीं है जिससे प्रगट होता हो कि ढाई हजार वर्षोंके बीचमें सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, महाराजा खारवेल, कलिंग देशाधिपति महाराज अमोघवर्ष, राष्ट्रकूटी आदि अनेक बड़े २ प्रसिद्ध जैन राजा हो गए हैं जिन्होंनें विशाल देशका शासन किया, काम पड़नेपर युद्ध करके विजय प्राप्त की व जैन धर्मका भी भले प्रकार साधन किया। जैनोंके यहां हिंसा दो तरहकी है—एक संकल्पी (इरादासे की गई) intentional, दूसरी आरम्भी। साधुगण दोनों ही प्रकारकी हिंसाके त्यागी होते हैं। वे खेती, व्यापार, राज्यपाट नहीं करते हैं, वे पूर्ण अहिंसक होते हैं; कोई प्राण भी लेवे तो सब शांतिसे सहनेवाले होते हैं, शत्रुपर

भी कभी क्रोध नहीं करते। गृहस्थीको धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ साधना पड़ता है इसलिये वह इन तीन पुरुषार्थोंके प्रबन्धमें जो अनिवार्य हिंसा होजाती है, उस लाचारीसे होनेवाली हिंसाका त्याग नहीं कर सकता। वह अपनी व अपने कुटुम्बकी, माल असबाबकी व देशकी रक्षा दुष्टोंसे करता है।

यदि अहिंसात्मक उपायोंसे काम नहीं चलता दीखता है तो लाचार हो शस्त्रोंके द्वारा भी शत्रुओंको या दुष्टोंको दमन करके रक्षा करता है। वह केवल संकल्पी हिंसाका त्यागी होता है। संकल्पी हिंसा वास्तवमें व्यर्थ हिंसा है। मानवोंकी भूलसे होती है। जैसे—धर्मके नामसे पशुबलि, शिकारके लिये हिंसा, मांसाहारके लिये पशुवध, मौजशौकके लिये पशु पीड़ा। विवेकी गृहस्थ इस प्रकारोंकी हिंसासे बहुत अच्छी तरह बच सकता है। जब पशुओंकी रक्षा करते हुए भोजनपानादिका प्रबन्ध होजावे तब वृथा पशुओंका वध क्यों किया जावे ?

संकल्पी हिंसाका त्यागी व आरम्भी हिंसाको नहीं छोड़नेवाला गृहस्थ सर्व प्रकारकी लौकिक और पारमार्थिक उन्नति कर सकता है, सेनामें भर्ती होसकता है, समुद्र यात्रा कर सकता है, अपराधीको दण्ड देसकता है, बड़े २ उद्योग धन्धे कर सकता है। इस रहस्यका ज्ञान जनताको न होनेसे जैनधर्मपर दोषारोपण किया जाता है कि इसकी उपदेशित अहिंसा कायर बनाती है।

वास्तवमें अहिंसा वीरोंका धर्म है, धैर्यवानोंका धर्म है, यही

जगतकी रक्षा करनेवाली है। भारतका राज्य विदेशियोंके हाथमें जानेका कारण हिंदु राजाओंके भीतर परस्पर फूटका होना है। पृथ्वीराज चौहान व जयचन्द कन्नौजमें फूट हो जानेपर एकने मुसलमानोंको साथ लेकर दूसरेको हराया। मुसलमानोंको अवसर मिल गया। भारतमें शासन जमा दिया। मुसलमानोंके पास राज्य जानेका व इंग्रेजोंके पास भारतका शासन होनेका कारण भी भारतीय शासकोंमें फूट व मुसलमान बादशाहोंका मौजशौक व राज्य प्रबन्धमें प्रमाद है। अहिंसासे कभी भी भारतकी पराधीनता नहीं हुई है।

जगतभरमें सुख शांति स्थापन करानेवाली अहिंसा ही है। यदि सर्व मानव न्यायके ऊपर चलें, कोई किसीके साथ असत्य व चोरी व लूटपाटका वर्ताव न करे तो सर्व मानव सुखसे अपनी२ जीवन-यात्रा पूर्ण कर सके। विश्वप्रेमके जगतमें फैलनेकी जरूरत है।

इस अहिंसाका उपदेश जैनियोंके सर्व ही तीर्थंकर करते आरहे हैं। हरएक कल्पकालमें भरतके आर्यखण्डमें २४ तीर्थंकर होते रहते हैं। वर्तमान कल्पमें भी जैनधर्म प्रचारक क्षत्रीय वीर चौवीस तीर्थंकर हुए हैं। प्रथम श्री ऋषभदेव इक्ष्वाकुवंशी नाभिराजाके पुत्र, फिर २–श्री अजितनाथ, ३–संभवनाथ, ४–अभिनन्दननाथ, ५–सुमति-नाथ, ६–पद्मप्रभु, ७–सुपार्श्वनाथ, ८–चन्द्रप्रभु, ९–पुष्पदन्त, १०–सीतलनाथ, ११–श्रेयांसनाथ, १२–वासुपूज्य, १३–विमल-नाथ, १४–अनन्तनाथ, १५–धर्मनाथ, १६–शांतिनाथ, १७–कुन्थुनाथ, १८–अरहनाथ, १९–मल्लिनाथ, २०–मुनिसुव्रत,

२१–नमिनाथ, २२–अरिष्टनेमि, २३–पार्श्वनाथ, २४ महावीर (नाथवंशी)।

इनमेंसे अयोध्यामें जन्म नं० १, २, ४, ५, १४ का, बनारसमें जन्म नं० ७ व २३ का, चंद्रावतीमें नं० ८ का, सिंहपुर या सारनाथमें नं० ११ का, कांपिल्यामें नं० १३ का, चम्पापुरमें नं० १२ का, द्वारका या सौरीपुरमें नं० २२ का, श्रावस्ती या सहठमहठमें नं० ३, कोसम्बीमें नं० ६ का, किष्किंधापुरमें नं० ९ का, भद्दलपुरमें नं० १० का, रत्नपुरमें नं० १५ का, हस्तनापुरमें नं० १६, १७ व १८ का, मिथुलापुरीमें नं० १९ व २१ का, राजगृहमें नं० २० का, कुंड ग्राम (विहार) में श्री महावीरका जन्म हुआ है। इनमेंसे नं० १२, १९, २२, २३, २४ ने कुमार वयमें साधु पद धारण किया। शेष १९ ने राज्य करके फिर साधु-पद धारण किया। सबने आत्मध्यान व पूर्ण अहिंसासे आत्माको शुद्ध करके निर्वाण प्राप्त किया। रिषभदेवने कैलाशसे, वासपूज्यने मंदारगिरिसे, महावीरने पावापुरसे व नेमनाथने गिरनारसे और शेष बीसने सम्मेदशिखर या पार्श्वनाथ-हिल (हजारीबाग, विहार) से मोक्ष प्राप्त किया। मोक्ष जानेके पहले अरहन्त या जीवन्मुक्त पदमें बहुत काल तक रहे तब सबने आर्य खण्डमें विहार करके अहिंसा धर्मका उपदेश दिया।

गौतमबुद्धके समयमें चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर नाथपुत्त हो गए हैं उनके उपदेशसे उस समय प्रचलित यज्ञोंमें पशुबलि बन्द होगई।

आजकल महात्मा गांधीजीने अहिंसाका झण्डा ऊंचा किया है। अहिंसाका प्रभाव जगंव्यापी किया है। अहिंसासे भारतकी पराधीनता हटानेका प्रशंसनीय उद्योग किया है, इस अहिंसाका जैन शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक कथन है। श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथ विशेष देखनेयोग्य है, जिस संस्कृत ग्रन्थका उल्था हिन्दीमें व इंग्रेजीमें मिलता है।

हमने बहुतसी जगहोंमें जब अहिंसापर जैन धर्मके शास्त्रोंके आधारसे भाषण दिया तब अजैन विद्वान चकित हो गए व अपनी अनभिज्ञता प्रगट की कि हम अबतक जानते थे कि जैनी राज्य प्रबन्ध कर ही नहीं सक्ते।

ता० ७ जनवरी १९३८ को हमारा अहिंसापर भाषण पंढरपुर जिला सोलापुरमें डाक्टर व्होरा दि० जैनके सभापतित्वमें हुआ था, उसको सुनकर वेदवेदांगके ज्ञाता विद्वान शास्त्री पं० काशीनाथ रामचन्द्र उंबरकरने उठकर अपना बहुत हर्ष प्रगट किया और कहा कि जन शास्त्रानुसार अहिंसाका सिद्धांत वास्तवमें व्यवहार कार्यमें बाधक नहीं है। हम समझते थे कि ये लोग राज्य प्रबन्धादि नहीं कर सक्ते सो आज हमारा भ्रम मिट गया।

उसी दिन मनमें संकल्प होगया कि जैन धर्ममें अहिंसाका क्या स्वरूप है ऐसी पुस्तक लिखकर प्रसिद्ध की जावे।

वीर सं० २४६४में मैंने मुलतान शहरमें वर्षाकाल बिताया

और वहां सेठ दासूराम सुखानन्द जैनके मनोहर बागमें ठहरा। साठ वर्षकी आयु है। भले प्रकारसे शरीरकी रक्षा करते हुए यहां निराकुल होकर इस पुस्तकका संपादन किया, जिससे जनताको विदित हो जावे कि जैन धर्ममें अहिंसाका क्या स्वरूप है। कहीं भूल हो तो जैन विद्वान क्षमा करें व सुधार लेवें।

मुलतान शहर (पंजाब)
ता० २५ सितम्बर १९३८।
मिती आश्विन सुदी २ सं. १९९५

ब्र० सीतलप्रसाद लखनऊवासी।
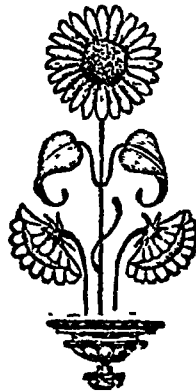
निवेदन ।

'जैनमित्र' के उपहार-ग्रन्थोंके महान आधारभूत श्रीमान् ब्रह्मचारीजी सीतलप्रसादजीने गत वर्ष मुलतानके चातुर्मासमें "जैन धर्ममें अहिंसा" नामक यह ग्रन्थ महान परिश्रम करके संपादित किया था फिर उसे 'मित्र' के उपहारमें प्रकट करानेको वहां कोशिश की थी लेकिन कोई ऐसे दानीका प्रबन्ध वहां न हो सका, अतः चातुर्मास पूर्ण होते ही आप लाहौर गये और वहां श्री० ला० रोशनलालजी जैन (हेडक्लर्क डी० एस० ओफिस एन. डब्ल्यू. रेल्वे फिरोज़पुर केन्ट) को यह ग्रन्थ दिखाया तो आपने इसे बहुत पसन्द किया (क्योंकि जैन धर्ममें अहिंसाका स्वरूप कैसा है यह बात बड़ी भारी छानबीनके साथ और प्रमाण सहित इसमें ब्रह्मचारीजीने प्रतिपादित की है) और अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजी श्री० लाला लालनमनजी जैन जो लाहौरमें करीब ४०वर्ष पहले "पंजाब जैन एकोनोमिकल प्रेस" जैनोंमें सबसे प्रथम खोलनेवाले थे व जिन्होंने छापेके सख्त विरोधके जमानेमें दिगम्बर जैन ग्रन्थ सबसे प्रथम छपानेकी हिम्मत की थी उनके चिर स्मरणार्थ यह ग्रन्थ छपवाकर 'जैनमित्र' के ४०वें वर्षके ग्राहकोंको उपहारमें देनेकी स्वीकृति दे दी अतः यह ग्रन्थ आपके स्मरणमें प्रकट करते हुये हमें बड़ा हर्ष होरहा है।

श्री० ला० लालमनजीका कुटुंब बडा है तथा आपका जीवन-परिचय जानने व अनुकरण योग्य होनेसे आपका संक्षिप्त जीवन-परिचय तथा फोटो इस ग्रन्थमें दिया गया है जो पाठकोंको रुचिकर

होगा। साथमें आपका "वंश-वृक्ष" भी परिश्रम पूर्वक संग्रह करके प्रकट किया गया है जो जानकर पाठकोंको स्वर्गीयके बृहत् वंशका भी अच्छा परिचय होजायगा।

श्रीमान् लाला रोशनलालजीने यह शास्त्रदान करके जैनमित्रके ग्राहकोंका बड़ा भारी उपकार किया है जो कभी भी भुलाया नहीं जासकेगा और इसके लिये आप जैनसमाजके अतीव धन्यवादके पात्र हैं। आपके इस दानका अन्य श्रीमान् अनुकरण करते रहें यही हमारी भावना है।

'जैनमित्र' के ग्राहकोंको तो यह ग्रन्थ भेंटमें मिल ही जायगा लेकिन जो 'मित्र' के ग्राहक नहीं हैं उनके लिये इस ग्रन्थकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ अलग भी निकाली गई हैं, आशा है इस ग्रंथका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

अन्तमें हमें यह लिखते हुए बड़ा दुःख होरहा है कि श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीने इस साल रोहतकमें चातुर्मास किया है यहां आपके दांये हाथमें कंपवायु हो जानेसे वैद्यराजकी सूचनानुसार आपको लिखना पढ़ना बंद करना पड़ा है इससे आप अब न तो मित्रके लिये लेख लिख सकते हैं या न कोई ग्रन्थका सम्पादन या अनुवाद कर सकते हैं अन्यथा रोहतकमें भी दो तीन ग्रंथोंका संपादन हो ही जाता। श्री० ब्रह्मचारीजी शीघ्र ही आरोग्यलाभ करके पूर्ववत् जैन साहित्यकी सेवा करें यही हमारी श्री जिनेन्द्रदेवसे प्रार्थना है।

सूरत-वीर सं० २४६५
भादों वदी ५
ता० ४-९-३९

निवेदक—
मूलचंद किसनदास कापडिया
—प्रकाशक।

श्रीमान्
विश्वमान्य
महात्मा
मोहनलाल
करमचन्द
गांधीकी
सेवामें
सादर
समर्पित।

महात्माजी !

आपने जगतमें अहिंसाका तत्व फैलाकर जो अद्भुत सेवा की है उसको देखते हुए हम आपके निष्काम सेवाधर्मसे अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। आपने मानों श्री महावीरस्वामी चौवीसवें जैन तीर्थंकरका ही सन्देश जगतको बताया है। आप दीर्घायु हो, अहिंसाका मुकुट आपके मस्तकपर सदा चमकता रहे। आपके उपदेशोंसे जगत सुख-शांतिको प्राप्त हो व अहिंसाका पुजारी बने। आपकी भक्तिमें इस पुस्तकको लिखकर मैं आपकी सेवामें सादर अर्पण करके अपनी लेखनीको कृतार्थ मानता हूं।

मुलतान शहर,
ता० २५ सितम्बर १९३८ } ब्र० सीतल।

श्रीमान् लाला लालमनजी जैन।

जन्म—
आषाढ सुदी ८ विक्रम सं० १९१९
मुताबिक ई० सन् १८६२

स्वर्गवास—
कार्तिक वदी ५ विक्रम सं० १९८१
मुताबिक १८ अक्टूबर १९२४

जैन विजय प्रिन्टिंग प्रेस-सूरत.

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

स्वर्गीय ला० लालमनजी जैन-लाहौरका संक्षिप्त जीवनचरित्र।

जन्म और शिक्षा। हमारे चरित्रनायकका जन्म आषाढ़ सुदी ८ वि० संवत १९१९ (सन् ईस्वी १८६२) को तहसील रामगढ़ रियासत अलवर राजपूतानामें सिपाही विद्रोहके पांच वर्ष पीछे हुवा था। इस गांवको ठाकुर रामसिंहजीने संवत् १८१० में बसाया था और ला० लालमनजीके पड़दादा चैनसुखदासजी पल्लीवाल जैन चौमासामूं (रियासत जयपुर) से ठाकुर साहबके साथ आकर दीवान रहे थे। इस गांवको ठाकुर रामसिंहजीके सुपुत्र स्वरूपसिंहजीसे महाराजा अलवरने संवत १८४० में अपने आधीन कर लिया था।

आपके पिता ला० लोकमनजी जैन धर्मके पक्के श्रद्धानी थे और साधारणसी परचूनीकी दुकान करते थे। आपने बाल्यावस्थामें रामगढके देवनागरी व उर्दूके स्कूलमें समयानुकूल उच्च शिक्षा प्राप्त करके संस्कृतका भी अच्छा अभ्यास करलिया था।

आपका विवाह सं० १९३४ में आगरानिवासी ला० घासी-रामजीकी सुपुत्रीसे हुवा था। शिक्षा पानेके पीछे आप कुछ समयके लिए रियासत अलवरमें पटवारी रहे। उन्हीं दिनोंमें आपके श्वसुर ला० घासीरामजी बदलकर लाहौरमें गवर्नमेंट प्रेसमें आगए थे और उन्होंने आपको अंग्रेजी व फारसीकी शिक्षा दिलानेके लिए लाहौरमें सन् १८८०

में बुला लिया और फारसीका मिडल पास करवाकर अंग्रेजी पढ़नेके लिए रंगमहल स्कूलमें दाखिल करवा दिया। सन् १८८२ में सरकारकी तरफसे डाक्टरीमें पढ़नेवाले लड़कोंको १०) माहवारका वजीफा (Scholarship) नियत हुवा था और उर्दू मिडल-तककी शिक्षावाले लड़के लिए जाते थे। आपको भी ला० घासी-रामजीने डाक्टरी श्रेणीमें दाखिल करवादिया। जब सर्जरी (Surgery) पढ़नेवाले कमरेमें सब जमाअत गई और एक लाश पोस्टमार्टम (Post Martum) के लिए लाई गई। पोस्टमार्टम होते देखकर डाक्टरी पेशेसे घृणा हो गई और अपना नाम जमाअतमेंसे कटवा-कर घरपर आ गए और ला० घासीरामजीसे कहा कि मेरेसे मुर्दे चीरनेका काम नहीं होगा, सो फिर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए स्कूलमें दाखिल हो गए।

कुछ दिन पीछे ला० घासीरामजीकी तबदीली शिमलेकी होगई। वह इनको बिना खबर किए शिमलेको चले गए। जब शामको घरपर न आए तो दूसरे दिन गवर्नमैंट प्रेससे ला० घासीरामजीके मित्र विलियम साहबसे असलीयतका पता लगा। विलियम साहबको जब डाक्टरीकी जमाअतसे नाम कटवानेके बाद नाराजगीका व बेसहारे होनेकी बातें बताई गईं तो विलीयम साहिबने शिमलेका पता बताया, और चिट्ठी लिखी। जब १०, १५, दिनतक जवाब नहीं आया तो आपने हिम्मत बांधकर विलियम साहिबसे प्रेसका काम सिखलानेको कहा। उन्होंने प्रेसका काम सिखलाना शुरू किया, और आपने

प्रेस कार्यमें पदार्पण।

दिन रात मेहनत करके डेढ़ महीनेमें काम अच्छी तरह सीख लिया और आठ रुपए माहवार पर कंपोजीटरकी नौकरी लगी। कुछ महीने काम करनेके पीछे एक माहवारी अखबारके कामका ठेका १०) महीनेपर मिल गया। दिनमें नौकरीपर जाते सुबह शाम और रातके ११, १२ बजे तक काम करके सब काम निभाया।

धर्मपालन व धर्मविचार।

आजिविकाके लिए इतना परिश्रम करते हुए भी आपने अपने नित्यकर्म सामायिक, पूजन जाप व स्वाध्यायको कभी नहीं छोड़ा। पुस्तकें इस कामके लिये उस समयमें मिलती नहीं थीं, सो अपने हाथसे लिखकर अपने गुटके बनाए हुये थे जिनमेंसे दो तो अभी तक आपकी यादगारके तौरपर लाहौरके मंदिरजीके शास्त्रभंडारमें रखे हुए हैं। जो कुछ लौकिक सफलता है उस सबकी मूलमें धर्म है, पुण्योपार्जन है, सो धर्मसाधनका कोई भी मौका हाथसे नहीं जाने देना चाहिए व हरसमय चलते फिरते, उठते बैठते नवकार मन्त्रका जाप करते रहना चाहिए यह आपका ध्येय था।

ग्रंथोंके छपवानेके भाव कैसे हुए।

नित्य पाठकी, पूजनकी व स्वाध्यायके लिए, पुस्तकोंका लाहौरमें न मिलना एक प्रेसमें कार्यकर्ताके रूपमें आपके हृदयमें बहुत खटकता था। नित्य पाठकी पुस्तकका खोजाना और जबतक नकल न होजावे तबतक नित्यके नियमोंमें बाधाके पड़नेने दिलमें यह बिठला दिया कि पूजन व

नित्य पाठकी व स्वाध्यायके लिए ग्रन्थोंके छप जानेसे बहुत संकट हट सक्ते हैं व हरएक भाई अपने पास रख सक्ता है।

इस समय आपके हमखियाल कुछ और भाई भी होगए और यह अनुभव किया कि दूसरोंके छापखानेमें धार्मिक ग्रंथोंका छपना विनय व शुद्धतापूर्वक नहीं होसक्ता सो एक छोटासा निजी प्रेस खोलनेका विचार किया। यह कार्य विना रुपयैके होना असंभव था सो और हिस्सेदार ढूंढकर २००) रुपयेका हिस्सा रखकर २ हिस्से आप लेकर १२ हिस्से दूसरोंको देकर सन १८८८ में लाहोरमें 'पंजाब इकानोमीकल प्रेस' के नामसे अपना प्रेस शुरू किया। दूसरे प्रेसमें उस समय आपको ३०) माहवार मिलते थे। उस नौकरीको छोड़ कर २५) माहवार पर प्रिंटर व मैनेजरके काम पर लगे।

प्रेस खोलनेका विचार।

एक स्वावलम्बी गृहस्थको जो परदेशमें दुःख सहने पड़ते हैं उनसे आप भी न बच सके। आप धर्मपर दृढ़ श्रद्धान रखते हुए अपने अटूट परिश्रमसे अपने उन संकटोंको परीक्षाका समय समझकर सबमें उत्तीर्ण हुवे। उस समयकी अपनी मित्रमंडलीकी रायके मुताबिक "जैन धर्मोन्नतिकारक" एक छोटासा ट्रैक्ट छपाकर विना मूल्य जैनसमाजमें वितरण किया गया जिसमें जैन ग्रन्थोंकी–बन्द भण्डारोंकी चूहों व दीमकोंसे क्या दुर्दशा होरही है, दर्शाई गई थी और जिनवाणीका उद्धार ग्रन्थोंको छपाकर करना हरएक जैन मात्रका परम कर्तव्य बताया गया था और फिर जैनधर्मकी

प्रथम व द्वितीय पुस्तकें मुंशी नाथूरामजी लमेचूके द्वारा बनवाकर प्रगट करवाईं व नाम मात्र मूल्यसे वितरण हुईं ।

ग्रंथों व पाठ्य पुस्तकोंका छपना।

इसके पीछे स्वर्गीय बाबू ज्ञानचंद्रजीको अपना हमखियाल बनाकर जैन ग्रंथोंके छपवानेके कार्यमें पक्का किया । पहले छोटे २ ट्रैक्टोंसे काम शुरू किया जैसे सामायक पाठ, भक्तामर भाषा, आलोचना पाठ, संकटहरण बिनती, जैन शास्त्रोच्चार, पंचकल्याणक, बाईस परीषह, निर्वाणकांड, कल्याण मंदिर, विषापहार, दशआरती, कारण पचीसी, तत्वार्थसूत्र, सीताका बारहमासा, राजुलका बारहमासा, ब्याहला नेमनाथ आदि आदि । फिर शील-कथा, दर्शन कथा, चारदानकथा, श्रीपालचरित्र आदि कथारूप पुस्तकें छपीं । बादमें मोक्षमार्ग प्रकाश, आत्मानुशासन, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण आदि ग्रन्थ । चारचौबीसी पाठ, भक्तामर अर्थ सहित, जैन बालगुटका प्रथम व द्वितीय भाग, णमोकारमंत्रका अर्थ, यमनसेन चरित्र, जैन तीर्थयात्रा आदि स्पष्टीकरण पुस्तकें छपीं ।

जैन पत्रिका व आत्मानंद जैन पत्रिका।

इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्यका खूब प्रचार करनेके लिए ट्रैक्टोंके साथ ही साथ "जैन पत्रिका" (दिगम्बरी) नामका एक स्वतन्त्र मासिक पत्र निकलता था जिसमें जैन धर्मका सत्य २ प्रचार व जैन धर्म व जैन जातिकी उन्नतिके उपदेश निकलते थे । श्वेतांबर समाजका मुख्य मासिक पत्र "आत्मानंद जैन पत्रिका" (श्वेतांबरी) भी निकलती थी और श्वेतांबर व स्थानकवासी समाजकी धार्मिक पुस्तकें भी छपती थीं ।

उस समय ग्रंथ छपानेवालोंको समाज किस निगाहसे देखती थी ?

उस समय जैन समाजमें बहुत संकीर्ण हृदयवालोंका बहुमत था और वह लोग ग्रन्थ छपानेवालोंको व छापनेवालोंको किस बुरी निगाहसे देखते थे व किस तरह कोसते थे उसका दिग्दर्शन श्रीमान पं० नाथूरामजी प्रेमी लिखित "जैन समाजकी जागृतिका इतिहास" जो १६ अगस्त १९३६ के सत्य संदेशमें छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य पाठकोंके ज्ञानके लिए उद्धृत किए जाते हैं:—

× × ×

"जैन समाजको जगानेवाला सबसे पहला आंदोलन जैन ग्रंथोंके छपानेका था। इसीने सबसे पहले समाजकी निद्रामें व्याघात डाला और उसे चौकन्ना कर दिया। इस चोटको वह बरदाश्त नहीं कर सका, एकदम चौखका उठा। जगह जगह पंचायतियां हुईं, छपे ग्रन्थोंके न पढ़नेकी लिखित प्रतिज्ञायें कराईं गईं, छपानेवालोंके बहिष्कार हुए, उनपर अपशब्दोंकी वर्षा की गईं, मार पीट भी की गईं, समाचार पत्र भी निकाले गए, हस्तलिखित ग्रन्थोंकी पूर्तिके लिये दफ्तर खोले गये और न जाने क्या क्या किया गया; परन्तु ग्रंथोंका छपना न रुका। वे छपे, वे बिके, घर २ पहुंचे और देखते २ सर्वव्यापी होगए। दो चार विरोध करनेवाले अब भी जीते हैं। परन्तु उन्हें विरोध करनेमें अब शायद लज्जा मालूम होती है। भा० दि० जैनधर्म संरक्षिणी महासभा छपे हुए ग्रन्थोंके विरोधका अभिनय अब भी कर रही है और अपना

विरुद्ध निभाए जारही है। परन्तु अभिनयके सिवाय कुछ नहीं है। क्योंकि उसके महाविद्यालयके विद्यार्थी छपे हुये ग्रन्थ पढ़ते हैं, अध्यापक पढ़ाते हैं। उसके मुख्य पत्र जैन गजटमें धर्मशास्त्रोंकी बातें छपती हैं, उसके संपादक जैन ग्रन्थ छपाते हैं और उनसे धन भी कमाते हैं।

स्वर्गीय मुन्शी अमनसिंहजी, मुन्शी नाथूरामजी लमेचू, बाबू सूरजभानुजी वकील, पं० पन्नालालजी बाकलीवाल, सेठ हीराचंदजी नेमिचन्दजी, बाबू ज्ञानचन्दजी, सेठ माणिकचन्दजी पानाचन्दजी, सेठ रामचन्द नाथारङ्गजी गांधी आदि सज्जनोंने ग्रन्थ प्रकाशन कार्यमें जो उद्योग किया था वह कभी भुलाया नहीं जा सक्ता। निन्दा, अपवाद तिरस्कारकी पर्वाह न करके ये सब अपने काममें बराबर जुटे रहे और अपने उद्देश्यको सिद्ध करके ही शांत हुए।

उस समयकी अनेक बातें याद पड़ती हैं। मैं स्वास्थ्य सुधारनेके लिए गजपन्थ क्षेत्रमें ठहरा हुआ था। उस समय देहली-मेरठकी तरफ़के यात्रियोंका एक संघ आया। कोई १० बजे दिनमें मैं मन्दिरमें शास्त्र पढ़ रहा था। यात्री पर्वतकी बंदना करके मन्दिरमें आए और शास्त्रकी वन्दना करके बैठने लगे। एक लालाजी घुटने टेककर शास्त्रके सामने झुके ही थे कि उनकी तीक्ष्ण दृष्टि शास्त्रके पत्रोंपर पड़ गई। बस वे चौंक पड़े और भूमि स्पर्श किए विना ही लौटकर खड़े हो गए—अरे यह तो छपा हुवा ग्रंथ है! बड़ा अच्छा हुवा कि बेचारोंने देख लिया और वे महान पापसे बाल २ बच गए। पीछे मालूम हुवा कि लालाजी

एक एम० ए० एल० एल० बी० वकील हैं। उस समय इतनी ऊंची शिक्षा भी उन्हें गतानुगतिक और अन्धश्रद्धाके दलदलसे ऊपर न उठा सकी थी।

× × ×

ग्रन्थ छपानेवालों, उनका प्रचार करनेवालों और छपे ग्रंथ पढनेवालोंको उस समय जो अपमान तिरस्कार और धिक्कार सहना पड़ता था वह इस समय तो कल्पनातीत होगया है। स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजी जैसे प्रतिष्ठित धनी, और जैन समाजका असीम उपकार करनेवाले भी इससे नहीं बचे थे। भरी सभामें दो कौड़ीके अपढ़ लोग भी उनका अपमान कर बैठते थे और उस अपमानको वे चुपचाप पी जाते थे। मुझ जैसे साधारण आदमियोंके निमित्त तो उनका मुंह जब चाहे तब दर्शन सुख प्राप्त करनेके लिये लालायित रहता था।

भादों सुदी पंचमीका उत्तम क्षमाका दिन था................ एक सट्टेबाज भाई—जिन्होंने उसी समय कई हजार रुपये कमाये थे और उसका कुछ अंश भगवानको भी दिया था—आये और बड़ी २ आंखें निकाल कर मुझसे बोले—तुम जो काम करते हो उससे तो भंगीकी टोकरी उठाकर पेट भरनेका काम अच्छा है। यदि तुम्हें वह भी नहीं मिलता तो मेरे यहां आओ, मैं तुम्हें नौकरी दूंगा। उस समय मेरा नया खून था, सुनते ही लाल होउठा। पं० पन्नालालजीने देखा। मैं उन्हें बहुत मानता था। उन्होंने मुझे हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया, और इशारेसे मेरे मुंहके ताला लगा दिया। मुझे अच्छी तरह याद है कि और सब लोग बुत बने

पूर्णमल
लालचन्द
गूजरमल
भैरोलाल
शीलचन्द
लालचन्द
ताराचन्द
प्रेमचन्द
कैलाशचन्

बैठे रहे, किसीके मुंहसे एक शब्द भी उस भले आदमीके विरुद्ध न निकला। उस समय ग्रन्थ छपानेका काम इतना बुरा था ! ये सट्टेबाज महाशय इतने धर्मात्मा थे कि इन्होंने अपने बेटेकी बहूको अपनी 'बीबी' बना रखा था और इसे प्रायः सभी लोग जानते थे, फिर भी उन्हें ग्रन्थ छपानेवालोंको गाली देनेका अधिकार था।"

× × ×

इसी तरहके अपमान, बिरादरीकी धमकियां आदि आपको भी सहनी पड़ीं लेकिन इन गीदड़ भबकियोंकी पर्वाह न करके अपनी धुनमें लगे रहे और जिनवाणीका उद्धार करना अपना ध्येय समझकर आजन्म सेवामें लगे रहे।

प्रेसकी सेवा।

जब आपने १८८८ में अपना प्रेस शुरू किया उस समय कलकत्तीया व बम्बईका टाईप ८, १० लकड़ीके केसोंमें रहता था और उसको कंपोज करनेमें जैसे जुलाहेको ताना तननेमें घूमना पड़ता है उसी तरह इधर उधर कंपोजीटरोंको घूमना पड़ता था। उन्होंने एक कारीगरको जो टाईप ढालना जानता था साथमें लेकर टाईपफौंडरी खरीदकर उसे हिन्दी टाईपकी सब तकलीफें बताकर उसके सुधारकी तरकीब बताकर छह महीनेमें नई तरजका टाईप ढलवाया जिससे बम्बईके डिगरीदार टाईपसे चार गुना काम एक कंपोजिटर कर सकता था। जब बाहिरके प्रेसवालोंको इस टाईपका पता लगा तो बाहिरसे आर्डरपर आर्डर आने लगे। टाईप फौंडरीकी दूसरी मिशीन लाहौरमें ही बनवाकर कार्य किया, और जो प्रेस पहले पहले २८००) से शुरु हुआ था, उसके हिस्से-

दारोंको ५०००) मुनाफेका बांटकर प्रेसकी मिलकियत ५००००) की करली। ६० के करीब उसमें मनुष्य काम करते थे। सन् १९१४ तक प्रेस इसी तरह तरक्की करता रहा लेकिन जब यूरुपकी लड़ाई शुरु हुई उस वक्त उर्दू, हिन्दी, गुरुमुखी, अंग्रेजीके तकरीबन २२ अखबार निकलते थे। सरकारने फी अखबार २०००) की नगद ज़मानत मांगी, जिसका ४४०००) के करीब रुपया नगद देना पड़ता था। किसी किस्मके खतरेमें न पड़ना अच्छा समझ कर सब अखबार कुछ ही समयमें छापने बंद कर दिये और सिर्फ किताबोंके कामको जारी रखा। लेकिन कागजकी कीमत तक-रीबन चार गुना बढ़ जानेसे किताबोंका काम भी बंदसा होगया। और सन् १९१६ में कंपनीके साथीदारोंने प्रेस दूसरेको बेचकर काम बंद किया।

अपनी शुरूकी निजी अवस्थाको ध्यानमें रखकर आपने यह प्रण किया हुवा था कि जो बेरोजगार

मनुष्य जातिकी सेवा। आपके पास आए उसे रोजीपर लगाना। प्रेसका काम २८ सालके समयमें कई हजार मनुष्योंको सिखाया था। पंजाबमें यू० पी० में और दूर बड़े शहरोंमें आपके सिखाए हुवे मनुष्य प्रेसका काम करते हैं। आपने अपने छोटे भाइयों ला० शंभूनाथ, ला० छोटेलालको भी प्रेसका काम सिखाया था। ला० शंभूनाथने १९१६में प्रेस छोड़कर परचूनीकी दूकान करली व ला० छोटेलालजीने आंखोंमें तकलीफकी वजहसे ८ सालके करीब प्रेसका काम करके खजानेमें नौकरी करली।

लाहौरके मंदिरजीकी सेवा।

आपके लाहौरमें आनेसे पहले वहां नित्य नियमसे पूजन नहीं होती थी। आपने मंदिरजीवाले मुहल्लेमें ही रहनेका मकान लिया और नित्य पूजन होनेका प्रबन्ध किया। पूजन फंडमें भाइयोंसे मासिक चन्देकी प्रथा शुरू की जो प्रबन्ध भगवानकी कृपासे आजतक चल रहा है। आप जबतक लाहौरमें रहे उसी मोहल्लेमें रहे। आप 'जैनमित्र' व 'जन हितैषी' के ग्राहक थे। उपहारी ग्रन्थोंके और लाहौरके ग्रन्थोंके सिवाय और ग्रन्थ जहां कहीं भी छपते थे वह लाहौरके मंदिरजीके शास्त्रभण्डारमें मंगवाते थे। व निजी शास्त्रभंडारमें उच्चकोटिके आध्यात्मिक ग्रन्थोंका संग्रह किया था और जहां भी रहे वहां मंदिरजीके शास्त्रभण्डारकी तरक्की की।

स्वाध्याय।

आपको छोटी उमरसे ही नित्य स्वाध्यायका नियम था। छोटी छोटी सैकड़ो पुस्तकोंके अलावा आपने आदिपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराणादि प्रथमानुयोगके और ज्ञानार्णव, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, सूत्रजीकी अर्थप्रकाशिका, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक टीकाएं, सप्तभंगी तरंगिणी, गोमट्टसार, लब्धिसार, चौबीस ठाणाकी चर्चा, त्रिलोकसार, भगवती आराधनासार आदि २ उच्च कोटिके ग्रंथोंको कई बार स्वाध्याय किया था व मनन करते थे।

तीर्थयात्रा।

आपने शिखरजी, गिरनारजी, चंपापुरी, पावापुरी, चौरासी, महावीरजी, अयोध्याजी, गुणावाजी, कुंडलपुर, पञ्चपहाड़ीकी यात्रा की और पीछे देहलीके संघके साथ और तीर्थोंकी वंदना करते थे

तो अंतराय कर्मके उदयसे रास्तेमें रातको पेशावके लिये उतरे थे कि एक बैलगाडीका पहिया कमरपरसे फिर गया और सख्त चोट आई।

धर्मसाधन।

आखिर मूडबिद्रीसे ही संघसे बिछुड़ना पड़ा और कुछ दिन इलाजके बाद जैनबिद्रीकी यात्रा पालकीसे करके घर आये। सन् १९१६ में प्रेस छोड़नेके पीछे स्वाध्यायमें हर समय तन्मय रहते थे। लाहौरमें धर्मसाधनके कम उपाय देखकर व गोष्ठीके न होनेसे १९१८ में अपने ज्येष्ठ पुत्र ला० मनोहरलालजी इंजीनियरके पास भीलवाड़ा (मेवाड़) में आगये। वहां स्वाध्याय व शास्त्र-चर्चामें सब समय व्यतीत होता था। सन् १९१९ में उदयपुरमें अग्रवालोंके मंदिरजीके उत्सवके समय वहांके विद्वानों और त्यागि-योंकी संगतिसे सप्तम प्रतिमा धारण करली। और घरमें रहकर ही अन्त समय तक साधन करते रहे। और बीमारीकी हालतमें भी कभी अंग्रेजी दवा सेवन नहीं की। आप डालूरामकृत बारहभावना (अप्रकाशित) का हर समय पाठ करते रहते थे। यह आपको प्रेसको छोड़नेके पीछे प्राप्त हुई थी।

प्रेरणासे क्या २ कार्य हुवे।

भीलवाडेमें पंचोंसे कहकर जैन औषधालय खुलवाया। वहांके मंदिरजीके शास्त्र भण्डारमें कई सौ रुपयेके ग्रंथ मंगवाए। विजयनगर मेवाडमें (जिसको पहले बरल कहते थे) जिन-मंदिरजी पहले नहीं था। वहांसे गुलाबपुरे दर्शन करनेको जाना पड़ता था सो पहले वहां एक किराएकी

दुकानमें चैत्यालय स्थापित करवाया । बादमें वहां अब एक शिखर-बंद आलीशान जिनमंदिर बन गया है । वहां भी शास्त्र भण्डार स्थापित करवाया ।

सन् १९२४में देवक्रिया गए, वहां सिर्फ अष्टमी चतुर्दशीको पूजन होती थी । वहां नित्य पूजनका बंदोबस्त करवाया और अपने विचारके अनुकूल Example is better than precept कि उपदेश देनेसे खुद मिसाल कायम करनी अच्छी है—आधा खर्च पूजनका अपने ज्येष्ठ पुत्र लाला मनोहरलालसे दिलवाया । आपने अपने पुत्रोंको अपनी आयमेंसे धर्मादा निकालनेका उपदेश दिया जिसके फलरूप यह पुस्तक श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीकी प्रेरणासे जैनमित्रके ४०वें वर्षके ग्राहकोंके करकमलोंमें आपकी स्मृतिमें भेट की जारही है ।

स्वर्गवास व दान ।

तीर्थयात्रामें जो आपको चोट आई थी उसका बहुत समयतक इलाज होता रहा । परन्तु आपका स्वास्थ्य बिगडता ही गया । अंतमें आपका स्वर्गवास, समाधिमरण युक्त, कार्तिक वदी ५ संवत १९८१ मुताबिक १८ अक्टूबर सन् १९२४ को दिनके २॥ बजे, नवकार मंत्र व अर्हन्‌का मनन करते करते होगया । अन्त समय २०१) का दान दिया था जो कि विजयनगरके मंदिरजीके बनवानेमें व और संस्थाओंको दिए गए थे ।

सन्तान ।

आपके ज्येष्ठ पुत्र ला० मनोहरलाल जैन आजकल उदयपुर राज्यके कारखानोंके इन्जीनियर हैं । इस साल छोटी सादड़ी (मेवाड़) में काम करते रहे हैं । आपका अपना निजी कारखाना

जीनिंगका विजयनगरमें है। आपके अलावा इंजीनीयरिंगके हिकम-तकी भी अच्छी मशक है। विना किसी किस्मकी फीस लिए मनुष्य मात्रकी सेवा करना आपका ध्येय है। दवाइयें भी मुफ्त बांटते हैं। देशी दवाइयोंके इंजेकशन भी तैयार किए हुए हैं। भीलवाडा, विजैनगर, देवकिया, कपासन वगैरह जगहमें जहां २ रहे हैं, डाक्टरोंने जिन मरीजोंको लाइलाज कह कर जवाब दिया था उन्हें ठीक किया और वहांके लोग सब याद करते हैं।

मंझले पुत्र रोशनलाल जैन बी० ए०, एन० डब्ल्यू० आर०, में डिवीजनल सुप्रीन्टेन्डेन्टके दफ्तरमें हैडक्लर्क हैं।

सन् १९१९ से १९३५ तक लाहौरमें दिगम्बर जैन मंदिरजीके मंत्रीका काम करते रहे और जहांतक हो सका जातिकी सेवा करते रहे। नित्य दर्शन व स्वाध्यायका नियम है। शिखरजी, गिरनारजी, चंपापुरी, हस्तनागपुर, चौरासी, महावीरजी, चमत्कारजी, सोनागिरजी मक्सी पार्श्वनाथजी, आबूजी, तारङ्गाजी, शत्रुञ्जयजी, सिद्धवरकूट, चूलगिर, जैन कांची, मूडविद्री, जैनबद्री आदि बहुत तीर्थोंकी सपरिवार यात्रा की है। स्वाध्याय व पूजनमें खास प्रेम है।

सबसे छोटे पुत्र ला० चन्दूलाल जैन आजकल जगाधरीमें रेलवेमें नौकर हैं। इसप्रकार हमारे चरित्रनायकका सुसम्पन्न परिवार आज भी धर्मार्थकामका सेवन करता हुआ मौजूद है। आपका 'वंशवृक्ष' भी अन्यत्र दिया जाता है।

ता० २५-८-३६.] —प्रकाशक।

विषय-सूची।

अध्याय ५—

अध्याय ६—

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
३	१०	जीवनेवाला	जाननेवाला
१०	१७	आत्मा परमात्माका	आत्मा या परमात्मा
११	१८	अशुभ	शुभ
१७	१६	....	नामकर्म—इस कर्मके
		....	निमित्तसे शरीरकी रचना होती है
१७	२१	अस्त	असर
१९	१६	बंधका	पुण्यका
२१	११	परोपसारी	परोपकारी
३८	२२	गुणन	गुणवान
४१	१७	फल	बल
४२	४	देखता	देखती
४४	८	वन्धो	बम्हो
४५	२१	आत्माएं	आशाएं
९२	१७	शस्त्र	सत्याग्रहके
९६	८	और	घोर
९७	८	द्वीजी दानां	द्विजादीनां
१०६	५	वन	बच
११४	८	शराबके	इसके

११५	१६	मोगा	मांगा
११७	१७	path	hath
११७	२१	पक्षीके	पृथ्वीके
१३७	१	न जाना	जाना
१३८	१०	....	देशव्रतके पांच अतीचार हैं (१) मर्यादाके बाहरसे मंगाना (२) मर्यादाके बाहर भेजना (३) मर्यादाके बाहर बात करना (४) मर्यादाके बाहर रूप दिखाना (५) मर्यादाके बाहर कंकर वगैरह फैंकना
१४०	४	छेदे	छेड़े
१४०	७	व	न
१४०	११	रुके	ढके
१४२	२१	बनाया	न बनाया

जैनधर्ममें अहिंसा ।

अध्याय पहला ।

भाव अहिंसा या भाव हिंसा ।

अहिंसा बड़ी प्यारी सखी है, प्राणी मात्रकी हितकारिणी है, इससे सर्व जगतके प्राणियों पर प्रेम भाव होजाता है । सर्व जीवोंसे मित्रता हो जाती है । अहिंसा सब चाहते हैं । हिंसा कोई चाहता नहीं । कोई नहीं चाहता है कि मेरेमें क्रोध हो, मान हो, माया हो, लोभ हो, काम विकार हो, भय हो, शोक हो । न कोई यह चाहता है कि मेरे विषयमें कोई हानिकारक विचार करे, कोई मुझे गाली दे, कोई मुझे झूठ बोलकर ठगे, कोई मेरा माल चुरावे, कोई मेरी स्त्री पर कुदृष्टि करे, कोई मुझे मारे पीटे, कोई मेरे प्राण लेवे, कोई नहीं चाहता है कि मुझे कुछ भी कष्ट पहुंचे । सब कोई निराकुल, शांत व सुखी रहना चाहते हैं । जैसा हम चाहते हैं वैसा ही सब चाहते हैं तब हमारा या हरएक मानवका यह कर्तव्य होजाता है कि हम स्वयं अहिंसाके पालक बनें, तब हमसे कोई भी कष्ट न पावेगा ।

सर्व प्राणी मात्रको सुखी शांत व उन्नति आरूढ़ रखनेवाली एक मात्र अहिंसा है। अहिंसा ही हमारे आत्माका धर्म या स्वभाव है। जब कि हिंसा आत्माका विभाव, दोष औपाधिक भाव, मल या विकार है।

आत्मा क्या वस्तु है?

हरएक चेतन प्राणीके भीतर जो कोई चेतनेवाला या देखने जाननेवाला है वही आत्मा है। अतति

ज्ञानमय है। जानाति इति आत्मा—जो जाने वही आत्मा है। ज्ञान आत्माका खास लक्षण है। यह ज्ञान अनात्मामें या चेतन रहित द्रव्योंमें नहीं है। हमारे पास कपड़े हैं, टेवुल है, कुरसी है, तिपाई है, घड़ा है, कागज है, कलम है, दावात है, मिट्टीके खिलौने हैं, पीतलके बर्तन हैं, सोने चांदीके गहने हैं, एक मकान खड़ा है, ईंट, चुना, पत्थर लगा है। ये सब चेतन रहित जड़ हैं। इनमें जाननेकी या मालूम करनेकी शक्ति नहीं है। एक लड़का गर्भसे निकला है उसको किसीने रोना, कष्ट मालूम करना, भूखसे दुःखी होना, खाने पीनेकी इच्छा करना, क्रोध करना आदि किसीने सिखाया नहीं। यदि उस बालकको कष्ट दिया जावे, कान पकडके उमेठा जावे, दूध न पीने दिया जावे तो वह रोएगा, परेशानी प्रकट करेगा, क्रोध भी झलकायगा, उसको अपने हितकी तलाश है, अहितसे बचना चाहता है। ये सब बातें इसी लिये हैं कि उसमें जाननेकी शक्तिको रखनेवाला एक पदार्थ है जिसको

आत्मा कहते हैं। एक मोमका पुतला बनाकर उसके कान उमेठें व थप्पड मारे व पगोंसे रोंदें तौ भी वह नहीं रोएगा, दुःख नहीं मालूम करेगा, क्योंकि वह बिलकुल जड़ है। वहां आत्माका संबन्ध नहीं है। वर्षोंकी बात याद रखना, तर्क करना, मनन करना, अनेक योग्य प्रस्तावोंको विचारना, ये सब काम आत्माके होते ही होसक्ते हैं। आत्मा यदि शरीरमें नहीं हो तो शरीर स्पर्श करके, रसका स्वाद लेके, नाक सूंघ करके, आंख देख करके, कान सुन करके, मन विचार करके कुछ नहीं जान सक्ते हैं। ये छहो स्वयं जड़ परमाणुओंसे बने हैं। इनमें जाननेकी शक्ति नहीं है, परन्तु ये जाननेमें सहायक हैं, ये जाननेके द्वार हैं, जीवनेवाला एक आत्मा ही है। इस ज्ञानकी निशानीको ध्यानमें लेकर इस अपने आत्माको ज्ञान चिह्नसे रहित सर्व ही अचेतन पदार्थोंसे जुदा देखना चाहिये।

आत्माकी सत्ता। एक आत्मा अपनी सत्ता (Existence) या अपनी मौजूदगी दूसरे आत्माओंसे भिन्न रखता है, ऐसा ही दिखलाई पड़ता है। एक ही समयमें भिन्न २ आत्माएं भिन्न २ काम करते हैं। कोई क्रोधी है, कोई शांत है, कोई मानी है, कोई विनयी है, कोई मायाचारी है, कोई सरल स्वभावी है, कोई लोभी है, कोई सन्तोषी है, कोई रोगसे पीड़ित है, कोई निरोगतासे हर्षित है, कोई पुत्रके जन्ममें हर्षित है, कोई पुत्रके वियोगसे दुःखित है, कोई धनके लाभसे गर्वित है, कोई धनके न मिलनेपर दीन व चिन्तित है, कोई ध्यानमें बैठकर शांति भोग रहा है, कोई सैकड़ो

प्रकारके विचार कर रहा है, कोई शास्त्र पढ़के ज्ञान बढ़ा रहा है, कोई मूर्ख आलस्यमें समय काट रहा है, कोईको शरीर छोड़ना पड़ता है, कोई शरीरको ग्रहण करता है, किसीका कन्यासे विवाह हो रहा है, किसीकी स्त्रीका मरण हो रहा है, अतएव बहु दुःखी है, दश वीस आत्माएं पास पास बैठें हो तौ भी हरएकके विचारोंमें भिन्नता है। संभव है वे एक समान कोई विचार करे परन्तु एकके विचार हैं सो दूसरेके विचार नहीं हैं। सामने अपने अनुभवमें यही आता है कि हरएक शरीरमें आत्मा अलग अलग है। एक ही सब शरीरोंमें हो तो सर्वका ज्ञान, व दुःख सुखका अनुभव एकसा होना चाहिये। ऐसा नहीं दिखाई पड़ता है। इसलिये यह भी मानना ठीक है कि हरएक आत्मा जुदा जुदा है। हमारा आत्मा जैसे अचेतन पदार्थोंसे जुदा है वैसा वह दूसरी आत्माओंसे जुदा है।

आत्मा शरीर प्रमाण।

यह आत्मा हरएकके शरीरमें सर्वांग फैला हुआ है, न शरीरके किसी एक भागमें है न शरीरसे बाहर आत्माका भाग है। क्योंकि यह बात अनुभवसे सिद्ध होती है कि हरएक आत्मा सर्वांग दुःख या सुखका फल अनुभव करता है। यदि किसी मनुष्यके शरीरके सारे अंगोंमें एक साथ सुइयां भोंकी जावें तो वह सर्वांग दुःख अनुभव करेगा। इसी तरह यदि गुलाबके फूलोंका स्पर्श एक साथ सारे अंगको कराया जावे तो वह सर्वांग स्पर्शका सुख अनुभव करेगा। और यदि शरीरसे बाहर दूरपर सुइयें या

शस्त्र हिलाए जावे या फूल बखेरे जावे तो शरीरधारी मानवको न शस्त्रके चुभनेका दुःख होगा और न फूलोंके स्पर्शका सुख होगा। इससे बुद्धिमें यही बात जचती है कि आत्मा शरीर-प्रमाण फैलकर रहता है। जैसा दीपकका प्रकाश छोटे वर्तनमें कम व बड़े वर्तनमें अधिक फैलता है वैसे ही यह आत्मा छोटे शरीरमें छोटा व बड़े शरीरमें बड़ा रहता है। इसमें दीपकके प्रकाशकी तरह परके निमित्त होने पर सकुडने व फैलनेकी शक्ति है। असलमें इस आत्मामें लोकव्यापी होनेकी शक्ति है।

अमूर्तीक है।

यह आत्मा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुणोंके न होनेसे अमूर्तीक Immaterial है तो भी आकारवान है। विना आकारके कोई वस्तु हो नहीं सक्ती है। आत्मा गुणोंका अमिट समुदाय परम पदार्थ है।

आकारवान है।

सर्व चेतन व अचेतन पदार्थोंका बाहरी आधार आकाश है। आकाशमें सर्व ही लोकके पदार्थ निवास करते हैं। आकाश सबसे महान अनन्त है। जो आत्मा जितने आकाशको रोककर रहता है वही उसका आकार है। ऐसा आत्मा अनादिसे अनंतकालतक रहनेवाला अविनाशी पदार्थ है। आत्मा किसीसे बना नहीं है जो बिगड जावे। यह स्वयं सिद्ध है आप हीसे है। मूर्तिक जड पदार्थ परमाणुओंके बंधनसे बनते हैं तब वे बिगड़कर परमाणुके अनेक भेदोंमें होजाते हैं। मकान ईंट, चूने, लकड़ी, पत्थरसे मिलकर बना

है। मकान टूटनेपर ईंट चूना आदि अलग अलग होजायंगे। यह देखनेमें आता है कि एक अवस्था बनती है तब कोई अवस्था बिगड़ती है। एक अवस्था बिगड़ती है तब कोई अवस्था बनती है। जगतमें केवल परिवर्तन या बदलाव हुआ करता है। मूल पदार्थ बना रहता है। सुवर्णको यदि मूल पदार्थ मान लिया जावे तो उसका बना कड़ा तोड़कर कण्ठी बन सक्ती है, कण्ठी तोड़कर बाली बन सक्ती है, बाली तोड़कर एक अंगूठी बन सक्ती है। चाहे जितने प्रकारके गहने बनावे सोना बना रहेगा, केवल अवस्थाएं पलट जायंगी।

गेहूंको मूल पदार्थ माना जावे तो उन गेहूंके दानोंको आटेमें बदले, आटेको लोईमें, लोईको रोटीमें, रोटी भी भोजनके ग्रासमें बदले। इन सब हालतोंमें गेहूं पाया जायगा, शक्लें बदल गई हैं। एक वृक्षके बीजमें पानी, मिट्टी, हवा जैसी जैसी मिलती है वैसे वैसे वह वृक्ष, शाखा टहनी व पत्तोंकी व फूल फलकी सूरतमें बदल जाता है। दो प्रकारकी हवा मिलनेसे पानी बन जाता है। पानीकी भाफ बन जाती है, भाफके जमा होनेसे बादल बनते हैं, बादलमें वर्षाका पानी बनता है। जिन परमाणुओंसे ये सब बनते हैं वे सब नित्य व अविनाशी हैं। जगतमें यह बात भले प्रकार सिद्ध होती है कि कोई मूल पदार्थ अकस्मात् बनता नहीं है न सर्वथा लोप होता है। यही सिद्धांत आत्माके साथ लगाना होगा। कर्मोंके फलसे आत्मा अनेक शरीरोंमें जाकर अनेक प्रकारका होता है। भावोंमें भी फरक होता हैं। घोड़ा, ऊँट, कुतरा, बिल्ली, बंदर, मोर, कबूतर सबमें आत्मा नाना प्रकारके भावोंको रखता है, परन्तु

आत्माका नाश नहीं होता है, जन्म नहीं होता है। जैसे हमारे सामने जड़ पदार्थोंमें अवस्था बदलती है, तौभी ये बने रहते हैं वैसे ही आत्मा मूलमें नित्य है, अवस्थाओंकी अपेक्षा बदलनेवाला है।

संसार अवस्थामें आत्मा मलीन है क्योंकि इसमें अज्ञान व क्रोधादि कषाय दिखलाई पड़ते हैं। आत्माके साथ कर्मोंका या पाप पुण्यका संयोग है। ये पाप पुण्य भी सूक्ष्म कर्म जातिके जड़ पुद्गलोंसे बनते हैं। जैसे पानी मिट्टीके मेलसे मैला होता है, स्वभावसे मैला नहीं है वैसे ही आत्मा पाप पुण्य कर्मोंके मेलसे मैला है, स्वभावसे मैला नहीं है।

स्वभाव इस आत्माका शुद्ध है, परमात्मा सिद्ध भगवानके समान है। यह अनंत ज्ञान दर्शनका धारी

शुद्ध स्वभावी है।

एक ही समयमें सर्व देखने जानने योग्यको देखता व जानता है। ज्ञान उसे ही कहते हैं जिसमें कोई अज्ञान न हो। अज्ञान आवरण कर्मके कारण होता है, निरावरण शुद्ध ज्ञान सर्व कुछ जानता है, इसीको सर्वज्ञपना कहते हैं। हरएक आत्मा अपने अपने स्वभावसे सर्वज्ञ है। इसमें सर्व जाननेकी शक्ति नहीं हो तो ज्ञानका विकास न हो, ज्ञानकी उन्नति न हो। ज्ञानकी उन्नति या बढ़ती बराबर देखनेमें आती है। एक बालक जब शालामें भरती होता है तब बहुत कम जानता है। वही बालक २० वीस वर्ष पढ़कर महान विद्वान-ज्ञानी होजाता है। उसमें ज्ञान कहीं बहारसे नहीं आया है, बाहरसे आता तो कहीं कम होता। जिन पढ़ानेवालोंसे सीखा है

इनका ज्ञान कुछ भी घटा नहीं। बाहरसे आता तो कहीं घटी होती तब ज्ञान बढ़ता सो ऐसा नहीं है।

ज्ञान अनंत होता है।

ज्ञानको कोई दे नहीं सक्ता, ज्ञानको कोई चुरा नहीं सक्ता, ज्ञानको कोई किसीसे ले नहीं सक्ता, छीन नहीं सक्ता। जहां भी ज्ञान बढ़ता है या ज्ञानकी तरक्की होती है वह भीतरसे ही होती है। अभ्यास करनेसे अज्ञानका परदा हटता जाता है, ज्ञान चमकता जाता है। जैसे मैला सोना मसालेमें डालनेसे जितना मैल छटता है, चमकता जाता है। आत्मामें अनंत—मर्यादा रहित ज्ञान है। कोई सीमा नहीं हो सक्ती है कि इस हदतक ज्ञान होगा, आगे नहीं होगा। साइन्स (विज्ञान) में नई नई खोजें हो रही हैं। अद्भुत ज्ञानका प्रकाश हो रहा है। २० वर्ष पहले कौन जानता था कि वे तारसे खबर आयगी, हजारों मीलका गान सुन पड़ेगा, हवाई विमानोंपर मानव उड़ सकेंगे। हरएक आत्मामें सर्व जाननेकी शक्ति है, यही मानना पड़ेगा। **स्वभावसे हरएक आत्मा ज्ञानमय है, परमात्माके समान सर्वज्ञ है।**

परम शांत है।

आत्माका स्वभाव शांत, वीतराग, निर्विकार है। क्रोध, मान, माया, लोभ आत्माके स्वभाव नहीं हैं। क्योंकि यह बात सर्व-सम्मत है कि ये क्रोधादि भाव किसीको भी पसन्द नहीं है। जब ये होते हैं ज्ञान दोषी हो जाता है। शांतिके समय ज्ञानकी मित्रता है। शांति सबको प्यारी लगती है। शांतिसे अपनेको भी

आराम मिलता है व दूसरोंको भी हमारे कारण कष्ट नहीं होता है। विद्याका चमत्कार, ज्ञानकी बढ़ती शांत परिणामोंसे होती है, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी मानव ज्ञानकी तरक्की नहीं कर सक्ता है। जब भाव ठंडे व शांत होंगे तब ही किसी पढानेवालेसे समझा जासकेगा व किसी पुस्तकका मतलब समझमें आयगा। विद्यार्थीलोग अपना पाठ याद करनेको इसीलिये एकांत व शांत स्थानमें बैठते हैं कि क्रोधादिके मैले विचार न हो, भाव शांत रहे जिसमें ज्ञान पुस्तकके मतलबको समझ सके। परमात्मा जैसे परम शांत हैं वैसे ही हरएक आत्मा स्वभावसे परम शांत है, कर्मोंका मैल है। मोहकर्मका उदय है या असर है जिससे क्रोधादि मलीन भाव झलकते हैं।

आनंदमय है। आत्माका स्वभाव आनन्दमय है। यह स्वाभाविक स्वाधीन आनंद है Independent happiness यह सुख किसी दूसरी चीजके होने पर नहीं होता है। इसमें कोई आकुलता नहीं होती है। यह सुख शुद्ध है, निर्दोष है। जब आत्मामें शांत भाव होता है तब यह सुख भी झलकता है। परमात्मा शुद्ध है इससे उसको सदा शुद्ध सुखका स्वाद आता है। हम संसारी जीवोंको इन्द्रियोंके भोगसे होनेवाले सुखका पता है परन्तु इन्द्रियोंके भोगसे रहित इस अतीन्द्रिय सुखका पता नहीं है। जो लोग नहीं जानते हैं कि आत्माका स्वभाव आनन्द है उनके भी कभी २ स्वार्थ त्याग करके परोपकार करते हुए इस आनन्दका स्वाद आता है। परोपकार करनेमें मोहका, लोभका, मानका त्याग किया जाता है। जितना

मोह हटता है उतना सुख प्रगट होता है। यदि हम कुछ क्षणके लिये मोहका बिलकुल त्याग कर दें, हमें सुख बहुत साफ २ मालूम होगा। जो मानव भाव सहित दूसरोंकी सेवा करते हैं उनको विना चाहते हुए भी आनन्दका लाभ होता है। यह सुख इन्द्रिय सुखसे भिन्न है। परोपकारी परोपकारके समय किसी इन्द्रिय सुखकी न तो कामना करता है और न उसके लिये प्रयत्न करता है तो भी अचानक उसको सुखका स्वाद आता है। परमात्मा आनन्दमय है, उसके शरीर नहीं है, न कोई स्पर्शनादि इन्द्रिय हैं। उसको देखनेका, सुननेका, सूंघनेका, चाखनेका, छूनेका कोई सुख नहीं है। न मनकी किसी कल्पनाका सुख है, किंतु उसको स्वाभाविक आनन्द—natural bliss है यही आनन्द हरएक आत्मामें परिपूर्ण भरा है। जैसे मिश्रीमें मीठापन, लवणमें खारीपना, नीममें कडुवापन सर्वांश भरा है ऐसे आत्मामें सर्वांश आनन्द भरा है।

इसलिये यह बात सिद्ध है कि हरएक आत्मा **स्वभावसे ज्ञानमय, परमशांत व परमानन्दमय है**—Every soul is by nature all knowing, all peaceful, & all blissful.

आत्मा परमात्माका कर्ता व भोक्ता नहीं है—आत्माका स्वभाव जब बिलकुल वीतराग, शांत, निर्विकार

परका कर्ता भोक्ता नहीं।

है तब वह अपने स्वभावमें ही सदा काल रहनेवाला है। जैसे सूर्य समभावसे प्रकाश करता है किसीपर राग द्वेष नहीं करता है, कोई प्रार्थना करे कि सूर्य अधिक प्रकाश दे, कभी अन्धेरा न हो,

कोई निंदा करे कि मत प्रकाश करो लोप हो जाओ तौ भी सूर्यके स्वभावके प्रकाशमें कोई कमी या ज्यादती नहीं होगी, ऐसा ही स्वभाव इस आत्माका है। इसमें न तो भलाई करनेका भाव हो सक्ता है न बुराई करनेका भाव हो सक्ता है। भलाई करना शुभ भाव है, बुराई करना अशुभ भाव है। जहांपर दूसरोंसे कोई प्रकारका प्रेम या स्नेह होगा वहां वीतराग या शांत भाव निर्मल न रहेगा। निर्मल पानीमें थोड़ीसी लाली हो या अधिक लाली हो, पानीकी निर्मलताको ढकनेवाली होती है। आत्मा या परमात्मामें यह रागका रंङ्ग संभव नहीं है।

संसारी आत्माओंमें मोह कर्मका संयोग है। शरीरका, वचनका व मनका संयोग है इसलिये शुभ या अशुभ राग होता है। मनसें भलाई या बुराई करनेका मन्तव्य या इरादा किया जाता है, वचनसे भलाई या बुराईका भाव प्रगट किया जाता है। शरीरसे भलाई या बुराई की जाती है। आत्माके शुद्ध स्वभावमें न मोहकर्म है, न मोहभाव है, न राग है, न द्वेष है, न आत्माके मूल स्वभावमें मंन है, न वचन है, न शरीर है। इसलिये आत्मा स्वभावसे अपने शुद्ध भावके सिवाय किसी भी अशुद्ध भावको नहीं कर सक्ता है तब यह न अशुभ भावका कर्ता है, न अशुभ भावका करनेवाला है, न घडेको बनाता है, न कपड़ेको बनाता है, न मकानको बनाता है, न बर्तनोंको बनाता है, न किसी रोगीकी सेवा करता है, न किसीको कष्ट देता है। संसारी आत्माओंमें कर्मोंका संबंध है, मोह व राग व द्वेष है, मंन, वचन व शरीर है इसलिये ये अशुद्ध आत्माएं राग, द्वेष, मोह,

भावोंमें उलझी हुई मनसे विचार करती है, वचनसे बोलनेका व शरीरसे काम करनेका प्रयत्न करती है। एक सुनार गहना बनाता है। इसके बनानेमें सुनारका पैसे पानेका लोभभाव कारण है तब वह मनसे गहना बनानेका उपाय विचारता है, वचनोंसे कहता है मैं बनाता हूं व हाथोंसे गहना घडता है। जगतमें संसारी प्राणी जो काम करते हैं उनमें उपादान और निमित्त दोनों कारणोंकी जरूरत पडती है। सुवर्णकी कंठी बनानेमें उपादान या मूल कारण सुवर्ण है। जो स्वयं कार्यमें बदलजावे उसको मूल कारण कहते हैं। निमित्त या सहायक कारण सुनारका अशुद्ध भाव है, मन, वचन, काय हैं, सुनारके ओजार हैं, अग्नि है व मसाला है। सुनारके मूल आत्माको या शुद्ध आत्माको देखे तो वह न अशुद्ध भाव कर सक्ता है न वहां मन वचन काय हैं। आत्मा स्वभावसे सोनेके गहनेका करनेवाला नहीं है। इसलिये आत्मा परभावका कर्ता नहीं है।

यह केवल अपने शुद्ध भावोंका ही करनेवाला है। इसीतरह यह आत्मा परभावका भोक्ता भी नहीं है। यह केवल अपने शुद्ध आनन्दका भोगनेवाला है। संसारी आत्माओंमें चाह होती है। जो मोहकर्मके कारणसे विकारी या औपाधिक भाव हैं और जब इच्छाके अनुसार वस्तुएं मिल जाती हैं तब राग भावसे उनको भोगता है, मन, वचन, कायसे उनके साथ वर्तन करता है तब इसे सुख विदित होता है। यदि पापकर्मके उदयसे शरीरको रोग होजाता है व धनकी हानि होजाती है व इष्ट संबंधीका वियोग हो जाता है या कष्टदायक स्थान मिलता है, रितु होजाती है या कोई

दुःखदायक वैरी मिल जाता है तब भयवान होकर द्वेष करता है, शोक करता है इससे दुःखको दर्शाता है।

रागभावसे सुख, द्वेषभावसे दुःख भोगनेमें आता है। यदि कोई महात्मा संसारसे वैरागी हो, संयमी हो, समभावका धारक हो तो वह सुंदर भोजन, स्थान, रितु पानेपर राग नहीं करेगा व खराब भोजन, स्थान, रितु पानेपर द्वेष नहीं करेगा। यदि कुछ भाव राग द्वेषका आएगा भी तो उस भावको वैराग्यकी ढालसे दूर करदेगा। उस वैरागीको सुख या दुख न होगा या यदि कुछ होगा भी तो रागीकी अपेक्षा बहुत कम होगा। मोहकर्मके जोरसे राग द्वेष होते हैं। मोहकर्मकी मन्दतासे बहुत कम रागद्वेष होते हैं। मोह न होनेसे रागद्वेष बिलकुल नहीं होते हैं। इसलिये मोह सहित व मन, वचन, काय सहित संसारी आत्माएं परभावको व परवस्तुको भोगनेवाली कही जासक्ती हैं। स्वभावसे आत्मा सांसारिक सुख या दुःखका भोगनेवाला नहीं है। यह तो अपने आनन्द स्वभावका भोगनेवाला है।

आत्मा परिणमनशील है। जगतमें हरएक चेतन या अचेतन पदार्थ कुछ न कुछ काम करता है। काम करनेको ही परिणमन कहते हैं। मिट्टीसे घड़ा बनता है। क्योंकि मिट्टीमें घड़ेके बननेकी या परिणमनेकी शक्ति है। हरएक पदार्थकी जितनी अवस्थाएं होसक्ती हैं, उन सबके बनानेकी या उनमें परिणमनकी शक्ति उस पदार्थमें रहती है एक समय एक अवस्थाका प्रकाश रहता है। दूसरी अनन्त अवस्थाएं उसमें छिपी रहती हैं।

परिणमनशील।

मिट्टीमें करोड़ों प्रकारकी शकलोंके वर्तन या खिलौनेके बनानेकी शक्ति हरसमय है। एक समय एक शकल या हालत प्रगट रहेगी, जब दूसरी हालत बनेगी, पहिली दशा लोप होजायगी। परिणमन या बदलनेकी शक्ति न होती तो मिट्टीसे कुछ काम नहीं लिया जासक्ता। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणोंके रखनेवाले परमाणु या जर्रे होते हैं उनके ही मिलनेसे मिट्टी, हवा, आग, पानी या दूसरे अनेक स्कंध बन जाते हैं। यद्यपि परमाणुओंका नाश नहीं होता है तो भी उनमें परिणमनशक्ति है तब ही वे मिलकर तरह तरहकी अवस्थाएं दिखाते हैं। एक वृक्षके पत्तोंको, फूलोंको व फलोंको देखा जावे तो पता चलेगा कि परिणमन शक्तिसे ही वृक्षमें ये सब प्रगट हो रहे हैं।

आत्मा भी एक पदार्थ है, अमूर्तीक पदार्थ है। अनेक गुणोंका व अनंत अवस्थाओंका स्वामी है। इसमें भी काम करनेकी या परिणमन करनेकी शक्ति है। अशुद्ध संसारी आत्माओंमें यह बात प्रगट हो रही है। एक संसारी आत्मामें अज्ञान भाव था, वह ज्ञान भावमें बदल जाता है। क्रोध भाव क्षमा भावमें, मान भाव विनय भावमें, मायाचार सरल भावमें, लोभ भाव सन्तोष भावमें, कायर भाव वीर भावमें, अशुभ भाव शुभ भावमें बदलता हुआ दीख पड़ता है। अशुद्धात्मा शुद्धात्मा या परमात्मा हो जाता है। क्योंकि आत्मामें परिणमन या बदलनेकी शक्ति है या कुछ काम करनेकी शक्ति है। हमको यह परिणमन शक्ति अशुद्ध संसारी आत्माओंमें तो प्रत्यक्ष दीख पडती है। शुद्ध आत्माके भीतर भी

परिणमन शक्ति है जिसका हमको पता नहीं चल सक्ता है। क्योंकि शुद्ध आत्मामें कोई मोह नहीं है न मन, वचन, काय हैं। इसलिये उनका कोई काम हमारे सामने प्रगट नहीं है। तथापि वे शुद्ध आत्माएं अपने स्वभावमें एक समान वर्तन करती या परिणमन करती रहती है, पत्थरके समान जड़ नहीं है, इसीलिये वे शुद्ध आत्माएं निरंतर ज्ञानानंदमें वर्तती हुई ज्ञान परिणतिको करती हैं व ज्ञानानंदको ही भोगती हैं। शुद्ध द्रव्योंमें शुद्ध कार्य होता है, अशुद्ध द्रव्योंमें अशुद्ध कार्य होता है। जिन समुद्रके या सरोवरके पानीमें मिट्टी मिली है वहां उसकी सब तरंगे मैली ही होंगी परन्तु जिस सरोवरके पानीमें मिट्टी आदिका कोई मैल नहीं है, पानी बिलकुल निर्मल है, वहां पानीकी सब तरंगे निर्मल ही होंगी, कूटस्थ नित्य कोई पदार्थ नहीं होसक्ता है।

आत्मा नित्य अनित्य दोनों स्वरूप है—नित्य अनित्य है। आत्माका आत्मापना कभी नाश नहीं हो सक्ता है। जितने गुण आत्मामें हैं उनमेंसे किसी गुणको वह कभी छोड़ नहीं सक्ता है न कोई नया गुण आत्माके भीतर प्रवेश कर सक्ता है। इसलिये आत्मा नित्य है, अविनाशी है परन्तु परिणमनशील भी है। स्वभावमें परिणमन करता है, परिणाम या अवस्था एक समय मात्र ठहरती है फिर बदल जाती है। इसलिये अवस्थाके नाश होनेकी अपेक्षा अनित्य है। ऐसा ही हरएक-जगतका पदार्थ है। कपड़ा हरसमय पुराना पड़ता जाता है। जब कुछ दिन बीत जाते हैं तब पुराना दीखता है।

यदि दोनों नित्य व अनित्य स्वभाव आत्मामें न हों तो आत्मा कभी शुद्ध नहीं हो सक्ता है, रागीसे वीतरागी नहीं हो सक्ता है, अज्ञानीसे ज्ञानी नहीं हो सक्ता है, भावोंमें पलटन नहीं हो सक्ता हैं, हिंसकमें अहिंसक नहीं बन सक्ता है, जगत चेतन व अचेतन पदार्थोंका समूह है, सर्व ही पदार्थ नित्य अनित्य दोनों रूप है तब ही जगत बदलता हुआ भी बना रहता है ।

भाव अहिंसा ।

हर एक आत्मा जब स्वभावसे या मूलमें पूर्ण ज्ञानमय, परम शांत व परमानन्दमय है—परमात्मा, ईश्वर, प्रभु, ईश यही है । इस आत्माका आत्मा-रूप रहना, इसमें कोई अज्ञान, रागद्वेष क्रोधादि भाव, क्लेश भाव या विषयवासना, या कोई प्रकारकी इच्छा या विकारका नहीं पैदा होना ही अहिंसा है । जब कि अज्ञान व रागादिका पैदा होना ही भाव हिंसा है । इस संसारी आत्माके साथ अनादि प्रवाह रूपसे आठ प्रकारकी प्रकृतिवाले कर्मोंका संयोग सम्बन्ध है । जबतक इन कर्मोंका कुछ भी असर आत्माके साथ हो रहा है तबतक यह पूर्ण अहिंसाका धारी नहीं है । पूर्ण अहिंसक रहनेके लिये आत्माको कर्मोंकी पराधीनतासे दूर करना व इसे शुद्ध स्वभावमें ही स्थिर रखना योग्य है ।

आठ कर्मका काम ।

जड़ पदार्थ पुद्गलके सूक्ष्म स्कंधोंको कार्मण वर्गणाएं कहते हैं । इनसे ही एक सूक्ष्म कार्मण शरीर बनता रहता है । ये कर्म एक तरफ इकट्ठे होते हैं, पिछले कर्म पककरके या फल देकर या बिना फल दिये गिर जाते हैं ।

ज्ञानावरण कर्म–ज्ञानकी शक्तिको ढकता है। जितना वह कर्म दबता है ज्ञान प्रगट होता है।

दर्शनावरण कर्म-देखनेकी शक्तिको ढकता है। जितना वह कर्म हटता है देखनेका स्वभाव प्रगट होता है।

अंतराय कर्म–आत्माके अनंत बलको ढकता है। जितना यह कर्म दबता है, आत्मबल soul force प्रगट होता है।

मोहनीय कर्म–आत्माके श्रद्धान व शांतिमय चारित्र गुणको ढकता है। जितना यह ठहरता है, श्रद्धान व वीतरागताका भाव प्रगट होता है। इन चार कर्मोंको घातीय कहते हैं क्योंकि ये आत्माके स्वरूपकी हिंसा करते हैं।

आयु कर्म–इसके फलसे आत्मा किसी शरीरमें रुका रहता है।

गोत्र कर्म–इसके फलसे किसी योनिमें जाता है व उच्च या नीच कहलाता है।

वेदनीय कर्म–इस कर्मके निमित्तसे सुखदायक या दुखदायक पदार्थोंका सम्बन्ध होता है।

इन चार कर्मोंको अघातीय कर्म कहते हैं, क्योंकि वे आत्माके गुणोंका घात नहीं करते हैं किंतु आत्माके पूर्ण अहिंसक रहनेमें बाहरी बाधक कारण जमा कर देते हैं।

इन आठों कर्मोंमें मोहनीय कर्म प्रधान है। इस कर्मके उदयसे या असरसे ही राग, द्वेष, मोह भाव या क्रोध, मान, माया, लोभ, भाव या काम भाव या भय या घृणा भाव आदि दोषपूर्ण या औपाधिक या विकारी भाव होते हैं। इन ही भावोंसे ही पाप

या पुण्य कर्मोंका या आठ कर्मोंका बंध होता है। मोहका नाश करनेसे कर्मोंका बंध बंद हो जाता है और वह आत्मा उसी शरीरसे पूर्ण अहिंसक या मुक्त हो जाता है।

इसीलिये रागद्वेष, मोहको या क्रोधादि भावोंको हिंसक भाव और वीतराग, शांत, निर्विकार, शुद्ध, निर्विकल्प, आत्मसमाधि भावको अहिंसक भाव कहते हैं।

पर पीडाका कारण हिंसक भाव है।

जिस आत्माके भीतर अहिंसक भाव होगा उसके द्वारा किसी बाहरी पर प्राणीको कोई कष्ट नहीं पहुंच सक्ता है। न उसके शरीरादि बाहरी शक्तियोंमें कोई निर्बलता आयगी। अहिंसक भाव अपना भी पूर्ण रक्षक है। और पर प्राणियोंका भी पूर्ण रक्षक है।

इसके विरुद्ध हिंसक भाव अपना भी घातक है व पर प्राणियोंको भी कष्ट व पीड़ा व बाधा व वध करानेमें निमित्त है।

जब किसीमें हिंसक भाव होगा तब उससे आत्माके गुणोंका मलीनपना हो जायगा, उसकी शांति बिगड़ जायगी, आनन्द बिगड़ जायगा तथा उसका रुधिर सूखने लगेगा, शरीरमें कुछ निर्बलता आ जायगी। उसका आकार विकारी हो जायगा। इसी भावसे प्रेरित होकर यह दूसरेका बुरा विचार करेगा। दूसरोंके साथ कड़वी बातें करेगा, दुर्वचन कहेगा व हाथोंसे व शस्त्रोंसे मारने लगेगा, दूसरोंको झूठ बात कह ठगेगा, दूसरोंका माल ग्रहण करेगा। पर पीड़ाकारी सारा ही काम तब ही हो सकेगा जब हिंसक भावोंकी प्रेरणा हो सके।

इसलिये यह बात सिद्ध है कि हिंसक भाव ही वास्तवमें हिंसा है। अहिंसक भाव ही वास्तवमें अहिंसा है। जो आत्माएं अहिंसक हैं वे ही पूज्य हैं, महान हैं, आदरणीय हैं। जिनके भावोंमें हिंसा है वे ही आत्माएं हानिकारक हैं व माननीय नहीं हैं।

जैन शास्त्रोंसे भाव अहिंसा व भाव हिंसाके संबंधमें कुछ वाक्य जानने योग्य दिये जाते हैं—

(१) विक्रमकी ४९ संवतमें प्रसिद्ध श्री कुंदकुंदाचार्य कहते हैं—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एस मज्झवसिदं ते।
तं पाववंधगं वा पुण्णस्स य वंधगं होदि ॥ २७२ ॥
मारेमि जीवावेमिय सत्ते जं एव मज्झवसिदंते।
तं पाववंधकं वा पुण्णस्स य वंधगं होदि ॥ १७३ ॥
अज्झवसिदेण वंधो सत्ते मारे हि माव मारे हिं।
एसो वंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २७४ ॥

भावार्थ-हे भाई! तेरा यह अध्यवसाय अर्थात निश्चय, संकल्प या मंशा या इरादा कि मैं प्राणियोंको दुःखी या सुखी करता हूं, यही द्वेष या राग भाव पापका या वंधका बांधनेवाला है। मैं प्राणियोंको मारता हूं, यह तेरा अभिप्राय पापका बांधनेवाला है तथा मैं प्राणियोंको जिलाता हूं यह भाव पुण्यका बांधनेवाला है। वंध तो राग द्वेषरूप अभिप्रायसे हो जायगा। चाहे दूसरे प्राणी मारे जावें या न मारे जावें। असलमें यही कर्मबंधका संक्षेप खुलासा है।

(२) द्वितीय शताब्दीके श्री समंतभद्राचार्य स्वयंभूस्तोत्रमें कहते हैं–

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं ।
न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ॥
ततस्तत्सिद्धयर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं ।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥११९॥

भावार्थ–श्री समंतभद्राचार्य श्री नमिनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि प्राणी मात्रकी अहिंसाको परमब्रह्म कहते हैं अर्थात् जहां पूर्ण अहिंसा है वहां परमात्माका स्वभाव है, पूर्ण रागद्वेष रहित वीतरागभाव है । जिस आश्रमके नियमोंमें रंचमात्र भी उठाने धरने आदिका आरम्भ नहीं है, उसी आश्रममें वह अहिंसा या अहिंसकभाव पाया जाता है । इसलिये पूर्ण अहिंसक भावकी सिद्धिके लिये आपने परम दयावान हो, गृहस्थको त्यागते हुए अंतरंग रागादि भावोंसे, बाहरी वस्त्रादिसे, ममताभाव छोड़ा । और कोई वस्त्र सहित व शस्त्र सहित व परिग्रह सहित साधुका भेष धारण न करके नग्न दिगंबर भेष धारण किया ।

(३) दशवीं शताब्दीके श्री अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रन्थमें कहते हैं–

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥ ४२ ॥
यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥४३॥

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

भावार्थ–आत्माके शुद्ध भावोंका जहां भी बिगाड़ है वह सब हिंसा है। झूठ बोलना, चोरी करना ये सब हिंसाके दृष्टांत हैं। जो क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंके वश होकर भाव प्राणोंको और द्रव्य प्राणोंको कष्ट देना या उनका बिगाड़ना यह ही वास्तवमें हिंसा है। रागादि विकारोंका नहीं पैदा होना ही अहिंसा है। जब कि रागादि भावोंका पैदा होना हिंसा है। जैन शास्त्रोंका यही सारांश है।

ऊपरके श्लोकोंका यही भाव है कि आत्माके शुद्ध भावोंमें कुछ भी चंचलता होगी वह सब भावहिंसा है।

निष्काम कर्म क्या है

विश्वप्रेमी, विषयोंकी कामनाके त्यागी परोपकारी मानव निष्काम कर्म करते हैं। दूसरोंकी सेवा करते हैं, यह भाव अहिंसा है कि भाव हिंसा है। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जिस किसी दशामें बुद्धिपूर्वक या इच्छापूर्वक मन वचन कायका बर्तन होगा वहां आत्माके शुद्ध भावोंमें स्थिति न रहेगी। इसलिये उसे भाव अहिंसा नहीं कह सकते, किन्तु वह भाव हिंसा ही है। भाव अहिंसा तो आत्माकी स्थितिरूप शुद्ध वीतरागभाव है, जहां किसी प्रकार शुभ या अशुभ काम करनेका विकल्प ही नहीं है। परन्तु वांछापूर्वक परोपकारकी अपेक्षा यह निष्काम कर्म बहुत उत्तम है। जब शुद्धात्मामें स्थिति न हो तब सर्व ही साधकोंको चाहे वे त्यागी हों या गृहस्थ, परोपकार भावसे निष्काम सेवा ही करनी चाहिये।

यद्यपि मंद राग होनेसे भावहिंसा है तौभी यह भावहिंसा पुण्यकर्मका बंध करानेवाली है ।

निर्विकल्प समाधि या आत्मध्यान या आत्मस्थिति वा वीतरागभावकी अपेक्षा निष्काम कर्म या सेवाका दरजा कम ही है । तौभी जहांतक कोई परमात्मा जीवन्मुक्त अर्हंतके पदके पास न पहुंचे और प्रमत्तविरत छठे गुणस्थानमें हो ऐसे साधुओंके भी भाव आत्मध्यानमें लगातार पौन घंटेसे अधिक नहीं ठहर सक्ते तथा दिन रातके चौवीस घंटोंमें समाधिभाव सबेरे, दोपहर, सांझ या रातको थोड़ी देर ही होगा, शेष बहुतसा समय खाली बचेगा, उस समय साधुओंको भी नानाप्रकार योग्य सेवाके काम करने चाहिये । समय आलस्यमें न खोना चाहिये । जो साधु इतना उन्नत होजाता है कि पौन घंटे बाद परमात्मा होजावे वह पौन घण्टेके पहले तक यथाकाल निष्काम सेवाधर्म करता ही है । यह शुभ रागकी भाव हिंसा जिसमें वैराग्य गर्भित है, स्वतंत्रताकी प्राप्तिमें बाधक नहीं है । वह साधु वैराग्यभावसे वर्तता है इससे पुण्यबंधके साथ २ कर्मोंका क्षय अधिक होता है, इससे यह निष्काम काम करनेवाला वैरागी साधु मोक्षमार्ग पर आरूढ़ है, विषयवांछासे पाप बंध होता है सो इसके भावोंमें नहीं है ।

सारांश यह है कि वीतराग शुद्ध निर्विकल्प समाधि स्वभाव ही भाव-अहिंसा है । इसमें कुछ भी दोष होगा तो वह भाव-हिंसा हो जायगी । यह जैनमतका सिद्धान्त है । भावहिंसाके होनेपर अच्छे या बुरे कामोंके लिये मन वचन कायका वर्तन होता है ।

लोक व्यवहारमें निष्काम सेवा या परोपकारको अच्छा समझते हैं सो यह भाव सर्व और भावहिंसा सम्बंधी भावोंसे श्रेष्ठ है। जहां आपको व दूसरोंको कष्ट पहुंचानेके भाव होंगे वह भाव हिंसा लोकमें निन्दनीय है, पाप बन्ध करनेवाली है। भाव हिंसाके विना कभी भी दूसरोंको कष्ट नहीं पहुंचाया जासक्ता है। जिस प्राणीके भाव निर्मल हैं वह जगतभरका मित्र होता है। इसलिये जैन सिद्धान्त कहता है कि श्रावक साधु या गृहस्थको चार प्रकारके भावोंको रखना चाहिये जो पर पीड़ाके व्यवहारसे बचानेवाले हैं।

(४) वि०सं०८१में प्रसिद्ध श्रीउमास्वामी तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च
सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥११-७॥

सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव रखना चाहिये। सर्व जीवोंका हित विचारना चाहिये। गुणवानोंको देखकर या जानकर प्रमोद या आनन्द भाव रखना चाहिये। दुःखी जीवोंको देखकर करुणा या दयाभाव लाना चाहिये। जो अविनयी या अपनी सम्मतिसे विरुद्ध हैं, उनपर माध्यस्थ या उदासीन भाव लाना चाहिये। द्वेषभाव किसी भी आत्माके साथ न रखना चाहिये।

दुष्ट, अन्यायी, बदमाशके कार्योंके साथ हित न करना चाहिये किन्तु उनकी आत्माओंका तो हित ही विचारना चाहिये।

भाव हिंसाका विकार मिटाना व भाव अहिंसाका गुण प्रगट करना हम मानवोंका कर्तव्य है। यह कैसे हो सो आगे कहा जायगा।

अध्याय दूसरा।

द्रव्य अहिंसा या द्रव्य हिंसा।

द्रव्य प्राणोंकी रक्षाको द्रव्य अहिंसा व द्रव्य प्राणोंकी हिंसाको द्रव्य हिंसा कहते हैं। जिन शक्तियोंके बने रहने पर एक संसारी जीव किसी शरीरमें रहकर अपने योग्य काम कर सक्ता है उन शक्तियों (Vitalities) को द्रव्य प्राण या बाहरी प्राण कहते हैं।

१० प्राण। ऐसे प्राण कुल १० हैं—इन्द्रिय पांच—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण। बल तीन—शरीरबल, वचनबल, मनबल। एक आयु, एक श्वासोच्छ्वास।

संसारमें प्राणी कम व अधिक प्राण रखते हैं। सबसे कम

जीवोंके भेद। प्राण (१) एकेन्द्रिय अर्थात् केवल स्पर्शन इन्द्रियसे स्पर्श कर जाननेवाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतिकायिक जीवोंके चार प्राण होते हैं।

स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास, वृक्षादि छूकर जानते हैं—दुःख सुख अनुभव करते हैं, शरीरबलसे मिट्टी पानी घसीटते हैं, बढ़ते हैं, फूलते फलते हैं, आयु पर्यंत जीते हैं। हवाको लेते हैं, हवा विना जी नहीं सक्ते।

(२) द्वेन्द्रिय—स्पर्शन और रसना इन्द्रिय रखनेवाले जसे लट, शंख, कौड़ी, सीप आदि इनके छः प्राण होते हैं। रसना इन्द्रिय और वचनबल, एकेन्द्रियके चार प्राणोंमें जोड़ देना चाहिये। ये

कीड़े मुखसे स्वाद भी लेते हैं व कुछ आवाज भी कर सक्ते हैं।

(३) तेन्द्रिय जीव-स्पर्शन, रसना, घ्राणसे छूकर, स्वाद लेकर, व सूंघकर जाननेवाले जैसे चीटी, चींटे, खटमल, जूं आदि। इनके सात प्राण होते हैं। एक नाक इंद्रिय द्वेन्द्रियके प्राणोंमें बढ़ा देनी चाहिये।

(४) चौन्द्रिय जीव-स्पर्शन, रसना, घ्राण और आंखसे छूकर, स्वाद लेकर, सूंघकर व देखकर जाननेवाले। जैसे मक्खी, भिंड, भौंरा, पतंगे आदि। इनके आठ प्राण होते हैं एक आंख अधिक तेन्द्रियके सात प्राणोंमें जोड़ देनी चाहिये।

(५) पंचेन्द्रिय असैनी या मन विना-स्पर्शन, रसना, घ्राण, आंख, तथा कर्णसे छूकर, स्वाद लेकर, सूंघकर, देखकर, व सुनकर जाननेवाले जैसे समुद्री कोई जातके सर्प। इनके नौ प्राण होते हैं। चौन्द्रियके आठ प्राणोंमें एक कर्णको जोड़ देना चाहिये।

(५) पंचेन्द्रिय सैनी या मन सहित-पांचों इंद्रियोंसे जाननेवाले तथा मनसे कारण कार्यको सोचनेवाले, शिक्षा लेनेकी समझ रखनेवाले, संकेत या इशारा समझनेवाले। इनके दश प्राण सर्व होते हैं। ऐसे प्राणी चारों गतियोंमें पाए जाते हैं।

(१) पशुगतिमें-जलचर जैसे-मगर, मच्छ, कछुवे, आदि। थलचर जैसे हिरण, सिंह, हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल, गाय, बकरी, भेड, कुत्ता बिल्ली, चूहे, स्यार, निवले आदि। नभचर जैसे कबूतर, मोर, कौए, तोता मैना, हंस, मुरगा आदि। ये सब पशु बड़ी बुद्धि रखते हैं। सिखाये जानेपर मानवोंके समान काम करते हैं।

(२) मनुष्य गतिमें–सर्व ही मानव १० प्राणोंके रखनेवाले होते हैं। साधारण तौरपर पशुओंकी अपेक्षा मनबल अधिक रखते हैं। मनसे सोचकर अनेक कला चतुराई निकालते हैं। बड़ी भारी उन्नति कर सकते हैं। आत्माको शुद्ध करके परमात्मा बन सक्ते हैं।

(३) नरकगतिमें–नारकी जीव–जो जैन शास्त्रके अनुसार अधोलोकके सात नरकोंमें जन्मते हैं। रातदिन मारपीट क्रोध करते हैं, महान् क्लेशित रहते हैं। इनके भी १० प्राण होते हैं।

(४) देवगतिमें देव–जैन शास्त्रानुसार चार प्रकारके देव हैं–(१) भवनवासी असुरकुमार आदि; व्यंतर, किन्नर, किंपुरुष आदि ये दोनों अधोलोककी पहली पृथ्वीके खर व पंक भागमें व कुछ मध्यलोकमें रहते हैं। ज्योतिषीदेव–सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह, तारे जो विमानोंमें रहते हैं। वैमानिकदेव–जो ऊर्द्धलोकमें स्वर्गादिमें रहते हैं। इन सबके भी १० प्राण होते हैं।

संख्याके भेदोंकी अपेक्षा भेद ऊपर लिखे हुए जानना चाहिये। एकसी संख्या रखनेवालोंके भी सबके प्राण एकसे नहीं होते हैं, किसीके अधिक मूल्यवान व उपयोगी होते हैं। पशुओंकी अपेक्षा मानवोंके प्राण अधिक मूल्यवान होते हैं। मानव अधिक उत्तम काम कर सक्ते हैं। मानवोंमें भी सब समान नहीं होते हैं। कोई महात्मा बड़े परोपकारी होते हैं, कोई देशके न्यायकारी शासक होते हैं, कोई विशेष ज्ञानी होते हैं। सर्व ही मानवोंमें मूल्य व उपयोगकी अपेक्षा अंतर मिलेगा। पशुओंमें भी दश प्राण समान रखनेपर भी कोई पशु बड़े उपयोगी हैं जैसे–गाय, भैंस दूध देनेवाले पशु।

द्रव्य प्राणोंका घात द्रव्य हिंसा है। चार प्राण रखनेवाले एकेंद्रिय वृक्षादि पांच प्रकारके जीवोंकी हिंसा और जन्तुओंकी अपेक्षा बहुत कम है। इससे अधिक हिंसा द्वेन्द्रिय छः प्राणवालोंकी, इससे अधिक तेंद्रिय सात प्राणवालोंकी, इससे अधिक चौन्द्रिय आठ प्राणवालोंकी, इससे अधिक पंचेन्द्रिय असैनी नौ प्राणवालोंकी, इससे अधिक दश प्राणवाले पशुओंकी, इससे अधिक दश प्राणवाले मानवोंकी होती है। देव व नारकीके घात करनेका अवसर नहीं आता है। एकसी संख्या रखने पर भी अधिक उपयोगी प्राणवालोंकी हिंसा अधिक होगी।

हिंसा कम व अधिक।

यह बात जान लेनी चाहिये कि मूल जीव या आत्माका तो घात कभी होता ही नहीं, यह तो अमूर्तीक, अखण्ड, अजर अमर, अविनाशी है, केवल इन प्राणोंका ही घात होता है। किसीके प्राणोंको पीड़ित, दुःखित व उनका घात करनेमें कारणभूत हिंसामय भाव हैं, क्रोधादि कषाय हैं तथा पापका बंध भी क्रोधादि कषायोंकी कम या अधिक मात्रा पर अवलम्बित है। साधारण तौर पर अधिक प्राणवालेकी हिंसा करनेमें अधिक कषाय करनी ही पड़ती है। पशुकी अपेक्षा मानवोंके मारनेमें अधिक कषाय करनी पड़ती है। साधारण तौर पर जितना उपयोगी प्राणी होगा उसके घातमें कषाय अधिक होगी। कषाय किसके कम है या अधिक यह बात भीतरकी है। व्यवहारमें ठीक ठीक पता नहीं चल सक्ता है। इसलिये व्यवहारमें अधिक प्राणवालोंकी हिंसा अधिक मानी जाती है।

जहांतक मानवकी शक्ति है, अपनी बुद्धिपूर्वक जो महात्मा गृहत्यागी परिग्रह रहित निर्ग्रंथ जैन साधु होते हैं वे द्रव्य हिंसाको पूर्णतासे बचाते हैं। इसीलिये वे दिवसमें रौंदी हुई भूमिपर चार हाथ आगे देखकर पग रखते हैं। रातको चलते नहीं, मौन रखते हैं, ध्यान करते हैं, परम मिष्ट शुद्ध अमृतमय वचन बोलते हैं। अपने शरीरको व अन्य किसी वस्तुको देखकर व मोर पिच्छिकाके कोमल बालोंसे झाड़कर उठाते व धरते हैं। मांस मद्य मधु रहित व दिनमें शुद्ध बना हुआ भोजन व पान भिक्षासे गृहस्थ द्वारा दिये जानेपर देख भाल कर लेते हैं, मलमूत्रादि जंतु रहित भूमिपर करते हैं। वे वृक्षकी पत्ती भी तोड़ते नहीं, जूता पहनते नहीं, कपड़ा भी नहीं पहनते हैं, प्राकृतिक नग्न रूपमें रहते हैं, कपड़ोंके धोने आदिकी हिंसासे बचते हैं, स्नान भी नहीं करते हैं, नहानेमें पानीके बहावसे बहुतसी हिंसा होती है। साधुओंके मंत्रोंका स्मान है। जैन साधु जैसे पूर्णपने भाव हिंसा बचाते हैं कष्ट पानेपर भी क्रोधादि नहीं करते हैं वैसे वे द्रव्य हिंसा बचाते हैं, सर्व प्राणी मात्रपर करुणा भाव रखते हैं।

द्रव्य अहिंसा पूर्ण पालनेवाले।

अहिंसाके पालनेके लिये पांच भावनाएं विचारना जरूरी है—

अहिंसाकी पांच भावनाएं।

(१) वचन गुप्ति—वचनोंको हम सम्हाल कर बोलें! हमारे वचनोंसे किसीको कष्ट न पहुंचे व किसीका बुरा न हो। सर्वका हित हो। (२) मनोगुप्ति—मनमें किसीका बुरा न विचारे। हिंसात्मक भावोंको मनमें न आने देवे। (३) ईर्या

समिति-चार हाथ भूमि आगे देखकर चलें। (४) आदान निक्षे- पण समिति-किसी वस्तुको देखकर रखें व उठावें। आलोकित पान भोजन-देखकर भोजन करें व पानी पियें। द्रव्य हिंसाका पूर्ण पालन गृहस्थोंसे नहीं होसक्ता है। उनका उद्देश्य यही होता है कि हम अहिंसा पूर्ण पालें परन्तु व्यवहार धर्म पुरुषार्थ, धन कमा- नेका पुरुषार्थ तथा काम करनेका पुरुषार्थ करनेके कारणमें पूर्ण भाव अहिंसा व पूर्ण द्रव्य अहिंसा पालनेमें असमर्थ होते हैं तौभी यथाशक्ति भाव हिंसा व द्रव्य हिंसासे बचनेका उद्योग करते हैं।

अहिंसाके लिये जैन आचार्योंके कुछ वाक्य हैं—

(१) सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थ- सुत्रमें कहते हैं—

"प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" ॥ १३-७ अ० ॥

भावार्थ—कषाय सहित मन, वचन, कायसे प्राणोंको कष्ट देना हिंसा है।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥ ४-७ ॥

भावार्थ—हिंसा बचानेके लिये पांच भावनाएं ऊपर कह चुके हैं।

(२) दशवीं शताब्दीके श्री अमृतचंद्राचार्य तत्वार्थसारमें कहते हैं—

द्रव्यभावस्वभावानां प्राणानां व्यपरोपणम् ।
प्रमत्तयोगतो यत्स्यात् सा हिंसा संप्रकीर्त्तिता ॥ ७४-४ ॥

भावार्थ–प्रमाद या कषाय सहित योगसे द्रव्य प्राणोंका तथा भाव प्राणोंका घात करना हिंसा कही गई है ।

(३) दशवीं शताब्दीके श्री नेमिचन्द्राचार्य द्रव्यसंग्रहमें कहते हैं–

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

भावार्थ–व्यवहार नयसे तीन कालमें चार प्राण जीवोंके होते हैं–पांच इंद्रिय, तीन बल, आयु, श्वासोश्वास । निश्चय नयसे एक चेतना प्राण होता है । शरीरमें बने रहनेके लिये द्रव्य प्राणोंकी जरूरत है । चेतना प्राण असली है कभी छूटता नहीं । व्यवहार प्राण छूट जाते हैं, नए शरीरमें नए मिलते हैं ।

(४) प्राचीन आचार्य वट्टकेरस्वामी मूलाचारमें कहते हैं–

वसुधम्मि वि विहरंता पीडं न करेंति कस्सइ कयाई ।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तमंडेसु ॥ ३२ ॥

(अनगार ध०)

भावार्थ–साधुजन पृथ्वीमें विहार करते हुए किसीको कभी भी पीड़ा नहीं देते हैं । वे साधुगण सब जीवोंपर ऐसी दया रखते हैं जैसे माता अपने पुत्रादिपर करती है ।

(५) दूसरी शताब्दीके शिवकोटि आचार्य भगवती-आराधनामें कहते हैं–

णत्थि अणूदो अप्पं, आयासादो अणूणयं णत्थि ।
जह तह जाण महल्लं, ण वयमहिंसासमं अत्थि ॥७८७॥

जह पव्वएसु मेरू, उच्चाओ होइ सव्वलोयम्मि।
तह जाणसु उच्चाय, सीलेसु वदेसु य अहिंसा ॥ ७८८ ॥

भावार्थ—जैसे परमाणुसे कोई छोटा नहीं है और आकाशसे कोई बड़ा नहीं है वैसे अहिंसाके समान कोई महान् व्रत नहीं है। जैसे लोकमें ऊंचा मेरु पर्वत है वैसे सर्व शीलोंमें व सर्व व्रतोंमें अहिंसाव्रत ऊंचा है।

(६) ग्यारहवीं बारहवी शताब्दीके शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्दपद्धतिः।
अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती ॥ ३२ ॥
अहिंसैव शिवं सूते दत्ते च त्रिदिवाश्रियं।
अहिंसैव हितं कुर्याद् व्यसनानि निरस्यति ॥ ३३ ॥
तपःश्रुतयमज्ञानध्यानदानादि कर्मणां।
सत्यशीलव्रतादीनामहिंसा जननी मता ॥ ४२ ॥
दूयते यस्तृणेनापि स्वशरीरे कदर्थिते।
स निर्दयः परस्यांगे कथं शस्त्रं निपातयेत् ॥ ४८ ॥
अभयं यच्छ भूतेषु कुरु मैत्रीमनिन्दिताम्।
पश्यात्मसदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम् ॥ ५२-८ ॥

भावार्थ—अहिंसा ही जगतकी रक्षा करनेवाली माता है, अहिंसा ही आनंदकी संतान बढ़ानेवाली है, अहिंसासे ही उत्तम गति होती है, अहिंसा ही अविनाशी लक्ष्मी है, अहिंसा ही मोक्षको देती है, अहिंसा ही स्वर्ग लक्ष्मीको देती है, अहिंसा ही परम हित-

कारी है, अहिंसा ही सर्व आपदाओंको नाश कर देती है। तप, शास्त्र ज्ञान, महाव्रत, आत्मज्ञान, ध्यान, दानादि शुभ कर्म, सत्य, शीलव्रत आदिकी माता अहिंसा ही मानी गई है। जो मानव अपने शरीरमें तिनका चुभनेपर भी अपनेको दुःखी मानता है वह निर्दयी होकर परके शरीरपर शस्त्रोंको चलाता है यही बड़ा अनर्थ है।

सर्व प्राणियोंको अभयदान दो, सर्वसे प्रशंसनीय मित्रता करो, जगतके सर्व चर अचर प्राणियोंको अपने समान देखो।

अध्याय तीसरा।

भावहिंसाके मिटानेका उपाय।

पहले अध्यायमें बताया जाचुका है कि रागद्वेषादि या क्रोधादि भावोंसे आत्माके गुणोंका घात होता है वह भावहिंसा है तथा भावहिंसा ही द्रव्यहिंसाका कारण है।

अहिंसामय जीवन वितानेके लिये हमें अपने भावोंसे हिंसाका विष निकालकर फेंक देना चाहिये।

रागद्वेषादि व क्रोधादि भाव होनेमें बाहरी निमित्त भी होते हैं व अन्तरङ्ग निमित्त क्रोधादि कषायोंके कर्मोंका उदय है, जिन कर्मोंको हम पहले बांध चुके हैं। बाहरी निमित्त कषायोंके उपजनेके न हों इसलिये हमको अपना वर्ताव प्रेम, नम्रता व न्यायसे करना चाहिये। जगतकी माया सब नाशवन्त है। इसलिये संपत्ति मिलानेका तीव्र लोभ न रखना चाहिये। तीव्र लोभसे ही दूसरोंको कष्ट

देकर, झूठा बोलकर, चोरी व अन्याय करके धन एकत्र किया जाता है। तीव्र लोभहीके कारण कपट व मायाचार करना पड़ता है। हमें संतोषपूर्वक रहकर न्यायसे धन कमाना चाहिये। यदि पुण्योदयसे अधिक धनका लाभ हो तो अपना खर्च सादगीसे चलाकर शेष धन परोपकारमें खर्च करना चाहिये। धनादि सामग्री होनेपर तीव्र मान होजाता है तब यह दूसरोंका अपमान करके प्रसन्न होता है, गरीबोंको सताता है। क्षणभंगुर जगतके पदार्थोंका मान नहीं करना चाहिये। जैसे वृक्षमें फल जब अधिक लगते हैं तब वह फलके भारसे नम्र व नीचा होजाता है वैसे ही धनादि संपत्ति बढ़नेपर मानवको नम्र व विनयवान होना चाहिये। जब हम न्यायसे, विनयसे, प्रेमसे वर्ताव करेंगे तब हमारा कोई शत्रु न होगा। हमारा कोई काम बिगड़ेगा नहीं, तब हमें क्रोध होनेका कोई कारण नहीं होगा। जब अपना कोई नुकसान होता है तब उसपर क्रोध आना संभव है जिससे नुकसान पहुंचा है। जब हमारा वर्ताव उचित होगा तब कोई दुष्टतासे या बदला लेनेके भावसे हमारा काम नहीं बिगाड़ेगा। अज्ञानसे, नासमझीसे या भोलेपनसे हमारा नौकर, हमारी स्त्री, हमारा पुत्र आदि कोई काम बिगाड़दें व नुकसान कर डालें तो बुद्धिमानको क्षमा ही करनी चाहिये और उनको समझा देना चाहिये जिससे अपनी भूलको समझ जावे व फिर ठीक काम करें। उनका इरादा हमें हानि पहुंचानेका नहीं है, केवल अपनी बुद्धिकी कमीसे व प्रमादसे उनसे काम बिगड़ गया है, तब उनपर क्रोध करना उचित नहीं है। इसतरह ज्ञानके बलसे क्रोधको जीतना चाहिये।

कितने ही दुष्ट यदि दुष्टतासे हमारा नुकसान करें तो उनको पहले तो प्रेमभावसे समझाना चाहिये। यदि वे नहीं मानें व रोकनेका कोई अहिंसामय उपाय न हो तो गृहस्थी उस दुष्टकी दुष्टतासे प्रेम रखता हुआ उसको हिंसामय उपायसे भी शिक्षा देता है जिससे वह दुष्टता छोड़ दे। ऐसी आरम्भी हिंसाका गृहस्थी त्यागी नहीं होता है। यह वर्णन विस्तारसे आगे किया जायगा। एक अहिंसाके पुजारीका कर्तव्य है कि वह अपना मन वचन कायका व्यवहार ऐसा सम्हालकर करे जिससे क्रोधादि कषायोंके होनेका अवसर नहीं आवे। अपना पुरुषार्थ ऐसा बराबर रहना चाहिये।

क्रोधादि औपाधिक या मलीन भाव हैं, जिनके प्रगट होनेमें अन्तरङ्ग क्रोधादि कषाय रूप कर्मोंका उदय आवश्यक है। यदि भीतर कषाय रूपी कर्मका सम्बंध न हो तो कभी भी आत्माके क्रोधादि मलीन भाव न हों। जैसे मिट्टीके मेल विना पानी कभी भी गन्दला नहीं होसक्ता। आत्मा स्वभावसे शुद्ध, ज्ञान, शांति व आनंदका अनन्त सागर है। यह बात हम पहले अध्यायमें बता चुके हैं व यह भी बता चुके हैं कि इसके साथ आठ कर्मोंका रचा हुआ सूक्ष्म शरीर है। इन आठोंमें मोहनीय कर्म प्रधान है।

कर्मोंका शमन कैसे?

एक दफे बांधे हुए कर्म तो आत्माके साथ संचित रहे हैं उनकी दशाको फल देनेके समयके पहले बदला जा सक्ता है। जब कोई कर्म बंधता है तब उसमें चार बातें होती हैं। (१) प्रकृति–या स्वभाव पड़ना कि यह ज्ञानावरण है या मोहनीय है।

इत्यादि। (२) प्रदेश–हरएक कर्मके स्कंधोंकी गणना होती है कि अमुक प्रकृतिका कर्म इतनी संख्यावाली वर्गणाओं (स्कंधों) में बंधा (३) स्थिति–कर्मके स्कंध जो किसी समयमें बंधे वे कबतक बिल-कुल दूर न होंगे–कालकी मर्यादा पड़ना। उस कालके भीतर२ ही वे खिर जायंगे। (४) अनुभाग–फल देनेकी तीव्र या मन्द शक्ति पड़ना। जब वह एकवार उदय आएंगे तब फल मन्द होगा या तीव्र–बांधकर संचित होनेवाले कर्मोंकी तीन अवस्थाएं पीछेसे हमारे भाव कर सक्ते हैं (१) संक्रमण–पाप प्रकृतिको पुण्यमें या पुण्यको पापमें पलट देना। (२) उत्कर्षण–कर्मोंकी स्थितिका अनुभाग शक्ति बढ़ा देना। (३) अपकर्षण–कर्मोंकी स्थिति या अनुभाग शक्ति कम कर देना।

आयुकर्मके सिवाय सात कर्मोंकी स्थिति तीव्र कषायसे अधिक व मन्द कषायसे कम होती है। पापकर्मोंका अनुभाग तीव्र कषायसे अधिक व मन्द कषायसे कम पड़ता है। पुण्य कर्मोंका अनुभाग मंद कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे कम पड़ता है। आठ कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, असातावेदनीय पापकर्म हैं, जब कि शुभ आयु, शुभ नाम, ऊँच गोत्र, सातावेदनीय पुण्यकर्म हैं। अशुभ आयु नर्ककी होती है उसमें तीव्र कषायके कारण स्थिति व अनुभाग अधिक व मंद कषायसे कम पड़ता है। शुभ आयु तिर्यंच, मनुष्य, देव आयु है। इनमें मंद कषायसे स्थिति अनुभाग अधिक व तीव्र कषायसे कम पड़ता है। बांधे हुए कर्मोंकी स्थिति घटाकर हम

उनको ऐसा कर सक्ते हैं कि वे विना फल दिये हुए शीघ्र ही गिर जावें । आठों कर्म बन्धनमें स्थिति व अनुभाग डालनेवाले कषाय-भाव हैं । तब इनकी दशा पलटनेके लिये या इनको क्षय करनेके लिये वीतरागभावकी जरूरत है ।

राग द्वेष मोह भावोंसे कर्म बंधते हैं तब वीतराग या शांत भावसे कर्म बदलते या झड़ पड़ते हैं ।

शांतभाव होनेका उपाय ।

शरदीसे ज्वर पीडितके लिये गर्म औषधि व गर्मीमे ज्वर पीड़ितके लिये शीत औषधिकी जरूरत है । इसी तरह अशांत भावोंसे बांधे हुए कर्म शांतभावसे दूर होजाते हैं। शांत भाव होनेका उपाय यह है कि हम उसकी भक्ति, पूजा व सेवा व उसका ध्यान करें जहां शांतभाव परिपूर्ण भरा है। जैसे गर्मीकी तापसे तप्त मानव शीत जलसे भरे सरोवरके पास जाता है, स्नान करता है, शीतल जल पीता है, तब तापको शमन कर देता है, इसी तरह शांतिमय तत्वके भीतर मगन होना चाहिये तब अशांति मिटेगी व अशांतिसे बांधे हुए कर्म निर्बल पड़ेंगे या दूर होजावेंगे ।

परम शांतिमय स्वभाव हरएक आत्माका है। संसारी आत्माएँ स्वभावसे शांत व शुद्ध हैं । कर्म मैलके कारण अशांत व अशुद्ध हैं । शुद्ध आत्मा या परमात्मा प्रगट शांत व शुद्ध हैं, उनमें कोई कर्म मैल नहीं है । इसलिये हमें अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावका या परमात्माके शुद्ध स्वभावका ध्यान करना चाहिये। हमारे कर्मोंके रोगके मिटानेकी दवा एक आत्मध्यान या सम्यक्समाधि है ।

ध्यानके लिये सबेरे, दोपहर व सांझका समय उत्तम है। उसके सिवाय ध्यान कभी भी किया जासक्ता है। स्थान एकांत व निराकुल होना चाहिये जहां मानवोंके शब्द न आवें। ध्यानके समय मनको सर्व चिन्ताओंसे खाली करले, वचनोंको रोकले, किसीसे बात न करे, शरीर सम हो, बहुत भरा हुआ व खाली न हो व शुद्ध हो, पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन या कायोत्सर्ग या अन्य किसी आसनसे ध्यान करे जिससे शरीर निश्चल रहे। चटाई पाटा आदि आसन बिछाले या भूमिपर ही ध्यान किया जासक्ता है।

ध्यानके अनेक मार्ग हैं जिनको श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थसे जानना जरूरी है। यहां कुछ उपाय बताए जाते हैं—

(१) अपने भीतर निर्मल जल भरा हुआ देखे, इसीको आत्मा स्थापन करे। मनको इस जलमें डुबोवे। जब मन भागने लगे तब कोई मंत्र पढ़े—ॐ, सोऽहं, अर्हं, सिद्ध, ॐ ह्रीं, णमो अरहंताणं, आदिमेंसे एक मंत्र लेले। कभी भी यह विचार करे कि जिस जलके समान आत्मामें मैं मनको डुबा रहा हूं वह परम शुद्ध, परम शांत व परमानंदमय है। इसतरह वारवार तीन बातोंको पलटते हुए ध्यानका अभ्यास करे।

(२) अपने भीतर शरीर प्रमाण स्फटिक पाषाणकी चमकती हुई मूर्तिको देखे कि यही आत्मा है। वारवार ध्यान करे, कभी२ ऊपर लिखित मंत्र पढ़े।

(३) ॐ मंत्रको नाककी नोकपर व भौंहोंके मध्यमें विराजमान करके उसको चमकता हुआ देखे, कभी कभी आत्माके गुणोंका मनन करे।

ध्यानमें जब मन न लगे तब अध्यात्मीक ग्रंथोंका पठन करे। तत्वज्ञानियोंके साथ धर्मकी चर्चा करे। संसारकी अवस्था नाशवंत है ऐसा विचारे। शरीर अपवित्र है व नाशवंत है ऐसा सोचे। इन्द्रियोंके भोग अतृप्तिकारी व तृष्णावर्द्धक हैं ऐसा मनन करे। जितना जितना वीतरागभाव बढेगा वह मोहनीय कर्मोंकी शक्ति घटाएगा।

गृहत्यागीसाधुजन वीतरागभाव लानेके लिये नित्य छः आवश्यक कर्म करते हैं—

(१) सामायिक—सवेरे, दोपहर, सांझ तीनों काल समभावसे आत्मध्यान। (२) प्रतिक्रमण—पिछले दोषोंका पश्चाताप। (३) स्वाध्याय—शास्त्रोंका मनन। (४) स्तुति—मोक्ष प्राप्त महान् आत्माओंका गुणानुवाद। (५) वन्दना—किसी एक महापुरुषकी विशेष भक्ति। (६) कायोत्सर्ग—शरीरादिसे ममत्वका त्याग।

साधुजन दशलक्षण धर्मका भी मनन व आचरण करते हैं।

दशलक्षण धर्म।

(१) उत्तम क्षमा—कष्ट पानेपर व कठोर वचन सुननेपर क्रोध नहीं करना। शत्रुपर भी क्षमाभाव रखना। क्रोधाग्नि जलेगी, आत्मगुणोंको नाश करेगी, ऐसा विचार कर क्रोधको भलेप्रकार जीतना। कोई मारडाले तौभी द्वेषभाव नहीं लाना।

(२) उत्तम मार्दव—मानको भलेप्रकार जीतना, अपमान पानेपर भी दुःख न मानना, गुण न होनेपर भी विनयवान रहना।

(३) उत्तम आर्जव—किसी तरहसे माया या कपट नहीं करना, मन वचन कायको सरल रखना, समताभाव जगाना।

(४) उत्तम सत्य—सत्य पदार्थका चिन्तवन करना, सत्य वचन शास्त्रोक्त कहना, किसी भी प्रयोजनसे असत्य न कहना, प्राण जानेपर भी सत्यका त्याग न करना।

(५) उत्तम शौच-लोभको शमन करके संतोष व पवित्र भाव रखना, मनको लालचसे मैला न करना।

(६) उत्तम संयम—पांच इंद्रिय व मनको वश रखना व सर्व प्राणियोंपर दयासे वर्तना।

(७) उत्तम तप—उपवासादि करके भलेप्रकार आत्मध्यानका अभ्यास करना।

(८) उत्तम त्याग—धर्मोपदेश देकर ज्ञानदान करना व अभयदान देना, प्राणी रक्षा करना।

(९) उत्तम आकिंचन्य—सर्व परिग्रह त्यागकर किसी भी पर वस्तुसे ममत्व न करना।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—मन वचन कायसे शीलधर्म पालना, व ब्रह्मस्वरूप आत्मामें लीन होना।

साधुजन ध्यान स्वाध्याय करके वीतरागभाव बढ़ाते हैं। कर्मोंके रस सुखानेका उपाय करते हैं। गृहस्थीका मन चंचल अधिक है, इससे गृहस्थीको आत्मध्यान व वीतरागताके लिये नीचे लिखे छः कर्म नित्य करते रहना चाहिये।

गृहस्थोंके छः नित्यकर्म ।

(१) देवपूजा—श्री ऋषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरोंने व श्री रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि महान् पुरुषोंने मोक्ष पाया है, उनके गुणोंका मनन देवपूजा है। उनके साक्षात् मौजूद न होनेपर उनकी ध्यानाकार मूर्तिएँ उनके स्वरूप बतानेके लिये स्थापित कर लेनी चाहिये। मूर्तियोंके सामने पवित्रात्माओंके गुणगान करना उसी तरह शांतभाव व वीतरागभाव जगा देता है जैसा उन महापुरुषोंका साक्षात् दर्शन। गृहस्थलोग घंटों गुणोंको गाते हुए भक्ति करते हैं। इस देवपूजासे किसी देवको प्रसन्न नहीं किया जाता है। भावोंको निर्मल करनेका यह उत्तम व निर्दोष उपाय है। यह भी ध्यानकी जागृतिका उपाय है। भावोंमें शांति पैदा होजाती है।

(२) गुरु भक्ति—आत्मध्यानी साधुओंकी भक्ति व सेवा व उनसे धर्म सुनना शांतभावको पैदा कर देता है।

(३) स्वाध्याय—आत्मज्ञान दायक शास्त्रोंका पढना व सुनना जरूरी है। इसके द्वारा मन शांतभावमें भीज जाता है।

(४) तप या सामायिक—सवेरा, दोपहर व सांझ तीनों समय या दो या एक समय एकांतमें बैठकर आत्मध्यानका अभ्यास करे जैसा ऊपर कहा है।

(५) संयम—पांच इन्द्रियोंपर व मनपर काबू रखे। शुद्ध भोजन करे, मांस, मदिरा, मधु न सेवन करे, ताजा भोजन करे, शुद्ध घी दूध शाक फलादि भक्षण करें—सात व्यसनोंसे बचें। वे हैं—

दोहा-जूआ खेलन मांस-मद, वेश्या विशन शिकार।
चोरी पर रमणी रमण, सातों व्यसन विकार॥

(६) दान-नित्यप्रति दान व परोपकार करे, धनको जो उत्पन्न करे, उसका दसवां भाग कमसेकम अलग करके आहार, औषधि, अभय, व विद्यादानमें लगावे। साधु हो व गृहस्थको दोनोंको योग्य है कि जिस तरह हो आत्माके गुणोंका मनन करें। आत्माके गुणोंका चिन्तवन ही भावोंमें निर्मलता पैदा करेगा तब पिछला बंधा मोह कर्म शक्तिमें निर्बल पड़ेगा तब उसका उदय भी निर्बल होगा। हिंसक भावोंको अहिंसक बनानेका यही उपाय है, जो अन्तरङ्ग कर्मकी शक्तिको क्षीण किया जावे। उसके सिवाय ज्ञानीको कर्मोंके उदयमें समभाव रखनेकी आदत रखनी चाहिये। तब पुण्य कर्मके उदयसे संपत्तिका लाभ हो तब पुण्य कर्मके फलको अथिर विचार कर उन्मत्त भाव नहीं लाना चाहिये। इसी तरह जब पापके उदयसे आपत्ति हो, रोग शोक हो तब भी अपने पाप कर्मका फल विचार कर संतोषसे कष्ट भोग लेना चाहिये।

जब समभावसे कर्मोंके फलको भोगा जायगा तब नवीन बंध बहुत हलका होगा व अंतरंगमें मोहनीय कर्मका फल घटता जायगा। आत्मज्ञानी अपने आत्माके समान सर्व आत्माओंको देखता है, इस समभावके मननसे भी वीतरागताका लाभ होगा। व्यवहारकी दृष्टिसे पाप पुण्यके संयोगवश संसारी जीव नानाप्रकारके दीखते हैं। कोई तुच्छ, कोई महान्, कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, कोई हितकारी, कोई अहित-कारी, कोई स्वामी, कोई सेवक, कोई राजा, कोई प्रजा, कोई स्त्री,

कोई बहन, कोई मित्र, कोई शत्रु । व्यवहारकी दृष्टि राग द्वेषके होनेमें निमित्त है, इसके विरुद्ध निश्चय नयकी दृष्टि सर्व सांसारीक व सिद्धात्माओंके एक समान गुणधारी परके संयोग रहित शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा देखता है। इस दृष्टीसे देखते हुए सच्चा भ्रातृप्रेमका लाभ होजायगा, समभाव आजायगा, रागद्वेषका निमित्त न होगा। समभावका अभ्यास अहिंसकभावको बढ़ानेवाला प्रबल कारण है। जैनाचार्योंने यही बात कही है।

(१) श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं-

अहमिक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥ ७८ ॥

भावार्थ-मैं एक अकेला हू, निश्चयसे शुद्ध हूं, कोईसे मेरा ममत्व नहीं है, मैं दर्शन ज्ञान गुणोंसे पूर्ण हूं, इस स्वभावमें ठहरा हुआ-इस स्वभावको अनुभव करता हुआ मैं सर्व कर्मोंको क्षय कर रहा हूं।

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥ २१९ ॥

भावार्थ-ज्ञान स्वरूपी आत्मामें नित्य रत हो उसीमें नित्य सन्तोष मान, उसीके स्वरूपमें तृप्त हो तो तुझे उत्तम सुख होगा।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विराग संपण्णो ।
एसो जिणो वदेसो तम्हा कम्मेसु माइज्ज ॥१६०॥

भावार्थ-रागी जीव कर्मोंको बांधता है, वीतरागी जीव कर्मोंसे छूटता है। वह जिनेन्द्रका उपदेश है, इसलिये कर्मोंमें रागी मत हो।

वही आचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥१०२
एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदिय महत्थं।
धुवमचलमणालम्बं मण्णेऽहं अप्पगं शुद्धं ॥१०४-२

भावार्थ—न मैं परका हूं, न मेरे कोई पर है, मैं एक अकेला ज्ञान स्वरूपी हूं, ऐसा जो ध्यानमें ध्याता है वह आत्माका ध्यानेवाला है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि मैं आत्मा, ज्ञान व दर्शन स्वरूप हूं, इन्द्रियोंसे व मनसे अगोचर हूं, परम पदार्थ हूं, अविनाशी हूं, निश्चल हूं, परावलंबनसे रहित हूं, केवल शुद्ध आत्मा हूं।

(२) श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितं ॥ २२ ॥

भावार्थ—सर्व इन्द्रियोंके कामको रोक करके व मनको एकाग्र करके आत्मज्ञानी अपने आत्मामें ही स्थित होकर आत्माके स्वरूपसे अपने आत्माको ध्यावे।

(३) आठवीं शताब्दीके श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं—

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज् ज्ञानभावनाम् ॥१७४॥
मुहुः प्रसार्य्य सज्ज्ञानं पश्यन् भावान् यथास्थितान्।
प्रीत्यप्रीती निराकृत्य ध्यायेदध्यात्मविन्मुनिः ॥ १७७ ॥

भावार्थ-आत्मा ज्ञान स्वभावी है, स्वभावकी प्राप्ति सो ही मुक्ति है। अतएव जो मुक्तिको चाहता है उसे ज्ञानकी भावना करनी योग्य है। आत्मज्ञानी मुनि वारवार आत्मज्ञानकी भावना करता हुआ तथा जगतके पदार्थोंको जैसे हैं वैसे जानता हुआ उन सबमें रागद्वेष छोड़के आत्माका ध्यान करता है।

(४) नौमी शताब्दीके देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

मल रहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमो बंधो मुणेयव्वो ॥ २६ ॥

भावार्थ—जैसा सिद्धक्षेत्रमें सिद्ध भगवान सर्व मैल रहित व ज्ञानमई निवास करते हैं, वैसे ही अपने देहके भीतर परमब्रह्म आत्माको जानना चाहिये।

(५) नागसेनाचार्य तत्वानुशासनमें कहते हैं-

संगत्यागः कषायाणां निग्रहो व्रतधारणं।
मनोऽक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यानजन्मने ॥ ७५ ॥

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पंचनमस्कृतेः।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्तशास्त्रस्यैकाग्रचेतसा ॥ ८० ॥

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥

भावार्थ—परिग्रहका त्याग, क्रोधादि कषायोंका रोकना, व्रतोंका धारण व मन व इन्द्रियोंका विजय, इतनी सामग्री ध्यानके पैदा होनेमें जरूरी है।

उत्तम स्वाध्याय पांच परमेष्ठीका जप है या जिनेन्द्रकथित शास्त्रको एक मनसे पढ़ना है। स्वाध्याय करते करते ध्यानमें लग जाओ। ध्यानमें मन न लगे तब स्वाध्याय करने लगो। ध्यान व स्वाध्यायकी प्राप्तिसे परमात्माका प्रकाश होता है।

(६) श्री पद्मनंदिमुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं–

साम्यं निःशेषशास्त्राणां सारमाहुः विपश्चिताः।
साम्यं कर्म महादानदाहे दावानलायते ॥ ६८ ॥

भावार्थ–समताभाव सर्व शास्त्रोंका सार है ऐसा विद्वानोंने कहा है। समताभाव ही कर्मरूपी महा वृक्षके जलानेको दावानलके समान है।

(७) शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं।

साम्यसीमानमालम्ब्य कृत्वात्मन्यात्मनिश्चयम्।
पृथक् करोति विज्ञानी संश्लिष्टे जीवकर्मणी ॥ ६ ॥
आशाः सद्यो विपद्यन्ते यान्त्यविद्याः क्षयं क्षणात्।
म्रियते चित्तभोगीन्द्रो यस्य सा साम्यभावना ॥११-२४
साम्यमेव न सद्ध्यानात्स्थिरी भवति केवलम्।
शुद्ध्यत्यपि च कर्मौघकलङ्की यन्त्रवाहकः ॥ ३–२९ ॥

भावार्थ–भेदविज्ञानी महात्मा समताभावकी सीमाको प्राप्त करके और अपने आत्मामें आत्माको निश्चल करके जीव और कर्मोंके सम्बंधको जुदा २ कर देता है। जो महात्मा समभावकी भावना करता है उसकी आशाएं शीघ्र नाश होजाती हैं। अविद्या क्षणभरमें चली जाती है, मनरूपी सर्प भी मर जाता है। सके

ध्यानिसे केवल समताभाव ही स्थिर नहीं होता है, कर्मोके समूहसे कलंकी जीव भी कर्मोको काटकर शुद्ध होजाता है ।

(८) पद्मनन्दि मुनि उपासक संस्कारमें कहते हैं—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमात्मदेवकी पूजा, गुरुकी भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेयोग्य कार्य हैं ।

अध्याय चौथा ।

गृहस्थोंका अहिंसा धर्म ।

गृहस्थके कार्योंमें लगा हुआ मानव पूर्ण अहिंसा साव नहीं सक्ता है । वह यह रुचि तो रखता है कि पूर्ण अहिंसा पालनी चाहिये । परन्तु गृहीके कर्तव्योंको करनेके कारण वह पूरी अहिंसा पाल नहीं सक्ता है तो भी यथाशक्ति अहिंसाको पालता है ।

जैन सिद्धांतमें हिंसा दो प्रकारकी बताई गई है । एक संकल्पी हिंसा जो हिंसाके संकल्प या अभिप्रायसे हिंसा की जावे । वह विना प्रयोजन होती है और गृहस्थी हर्षपूर्वक उसका त्याग कर देता है । जो हिंसा धर्मके नामसे पशुवध करनेमें होती है, शिकार खेलनेमें होती है, मांसाहारके लिये व चमड़ेके लिये कराई जाती है वह सब संकल्पी हिंसा है । उसका विशेष वर्णन आगे करेंगे ।

दूसरी आरम्भी हिंसा जो गृहस्थीको लाचार होकर जरूरी कामोंके लिये करनी पडती है, इसका त्याग गृहस्थी नहीं कर

सक्ता है। तो भी विना प्रयोजन आरम्भसे वचनेकी चेष्टा करता है। गृहस्थी उसे ही कहते हैं जो घरमें पत्नी सहित वास करे। उसकी सन्तानें हों, जो धर्म, अर्थ काम तीन पुरुषार्थोंका साधन मोक्ष पुरुषार्थके ध्येयको सामने रखकर करे। आत्मा कर्मके बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जावे। यह ऊँचा उद्देश्य सामने रखकर गृहस्थीको अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। गृहस्थीको व्यवहार धर्म—जैसे पूजा, पाठ, जप, तप, दान, धर्मस्थान निर्माण आदि काम करने ही पड़ते हैं। वह साधुओंको दान देता है तब साधु मोक्षका मार्ग साधन कर सक्ते हैं। घरमें मन क्षोभित होता है, इसलिये धर्मसेवनके लिये निराकुल स्थान बनाता है। मनको जोड़नेके लिये जल, चंदन, अक्षतादि द्रव्योंको लेकर पूजन व भक्ति करता है। इस-तरह व्यवहार धर्मके पालनमें कुछ थोड़ा या बहुत आरम्भ करना ही पड़ता है, जिससे क्षुद्र प्राणियोंकी हिंसा होना सम्भव है। अर्थ पुरुषार्थमें गृहस्थीको धन कमाना पड़ता है। धन कमानेके लिये उसको न्यायपूर्वक उद्योग धंधा करना पड़ता है। यह जगत विचित्र है। सज्जन और दुर्जन दोनोंसे भरा है। दुर्जनोंसे रक्षा करते हुए जीवन विताना है। इसीलिये आजीविकाके साधन जैन सिद्धांतमें छः प्रकारके बताए हैं—

छः उद्यम।

(१) असिकर्म—शस्त्र धारकर सिपाहीका काम करना। पुलिसकी जरूरत रोज चोर व डाकुओंसे बचनेके लिये है। सेनाकी जरूरत भूमिके लोभी राजाओंके हमलेसे बचनेके लिये है,

शस्त्रोंसे कष्ट पानेका भय मानवोंको दुष्ट कर्मसे रोक देता है। अपने प्राणोंकी रक्षा सब चाहते हैं। यदि असि कर्मको उठा दिया जावे तो जगतकी दुष्टोंसे रक्षा न हो। तब कोई आरामसे रहकर गृहस्थ व साधु धर्मका पालन नहीं कर सके। असिकर्ममें दृष्टि रक्षाकी तरफ है, हिंसा करनेकी तरफ नहीं है। रक्षामें बाधककी हिंसा करनी पड़ती है। (२) मसिकर्म—हिसाब किताब वहीखाता लिखनेका काम। लेनदेनमें व्यापारमें लिखापढ़ीकी जरूरत पडती है। परदेशको पत्र भेजने पड़ते हैं। इस काममें भी कुछ आरंभी हिंसा होना संभव है। (३) कृषि कर्म-खेतीका काम, इसकी तो प्रजाको बहुत बड़ी जरूरत है। अन्न, फल, शाककी उत्पत्ति विना उदर भरण नहीं होसक्ती है। खेतीके लिये भूमि हलसे नर्म की जाती है, पानी सींचा जाता है, बीज बोया जाता है, अन्नादि काटकर एकत्र किया जाता है। खेतीकी रक्षा की जाती है, खेतीके काममें थोड़ी वा बहुत आरंभी हिंसा करनी पडती है। (४) वाणिज्य कर्म—व्यापारकी भी जरूरत है। भिन्न २ स्थानोंमें भिन्न २ वस्तुएं पैदा होती हैं, व बनती हैं व कच्ची वस्तुओंसे पक्की तैयार करानी पड़ती हैं। जैसे रूईसे कपड़ा। वस्तुओंको कहींसे इकट्ठा करके व पक्का माल तैयार कराके स्वदेशमें व परदेशमें विक्रय करना व मालका खरीदना व्यापार है। व्यापारमें वाहन पर ढोते हुए, उठाते धरते हुए आरंभी हिंसा होना संभव है। (५) शिल्प कर्म—कारीगरीके कामकी जरूरत है। थवई मकान बनाते हैं, लुहार लोहेके बर्तन व शस्त्र बनाते हैं, सुनार गहने घडते हैं, जुलाहे कपड़ा बुनते हैं; बढ़ई लकड़ीकी चीजें

बनाते हैं, नाना प्रकारकी वस्तुएं गृहस्थीको चाहिये। तख्त, कुर्सी, मेज, कागज, कलम, वस्त्र, बर्तन, परदे, चटाई, बिछौनें आदि इन सबको बनानेका काम करते हुए थोडी या बहुत आरंभी हिंसा होना संभव है। (६) विद्या कर्म—गृहस्थियोंके मन बहलानेके लिये कला चतुराईके काम भी होते हैं। जैसे गाना, बजाना, नाचना, चित्रकारी आदि। कुछ लोग इसी प्रकारकी कलाओंसे आजीविका करते हैं। इस कर्ममें भी थोड़ी या बहुत आरंभी हिंसा होना संभव है। इन छः प्रकारके आवश्यक कर्मोंमें जो हिंसा लाचार हो करनी पड़ती है वह सब आरम्भी हिंसा है। जो आदमी इन छः प्रकारके काम करनेवालोंकी सहायता करते हैं वे सेवाका काम करते हैं। सेवासे भी पैसा कमाया जाता है। सेवकोंको भी उस आरम्भी हिंसामें अपनेको लगाना पड़ता है।

काम पुरुषार्थमें—गृहस्थियोंको भोजनपान आराम व न्यायपूर्वक विषय सेवन करना पड़ता है। योग्य संतानको जन्म देना पड़ता है। उसे स्त्री व पुरुष रत्न बनाकर उत्तम जीवन विताने योग्य करना पड़ता है। इन कार्योंके लिये भी कुछ आरम्भी हिंसा करनी पड़ती है।

धनसम्पत्ति व भोगोपभोगकी रक्षा करना भी जरूरी है। दुष्टोंसे व लुटेरोंसे व शत्रुओंसे धन माल राज्यकी रक्षा करनेमें पहले तो ऐसे अहिंसामय उपाय काममें लेने चाहिये जिनसे अपनी रक्षा होजावे व दूसरेका घात न करना पड़े। यदि कोई उपाय अहिंसामय न चल सके तो गृहस्थको शस्त्रका उपयोग करके रक्षा करनी पड़ती है, उसमें भी हिंसा होती है परन्तु प्रयोजन अपनी

अपनी सम्पत्तिकी रक्षा है, उसकी हिंसा करना नहीं है। जब वह विरोधको बंद कर दे तो यह तुर्त प्रीति करले। इस तरह आरम्भी हिंसाके तीन भेद होजाते हैं।

(१) उद्यमी हिंसा—जो हिंसा असि आदि छः न्यायोचित कर्मसे आजीविकाका उपाय करते हुए करनी पड़ती है।

(२) गृहारम्भी हिंसा—जो घरमें रसोई बनाने, चक्कीमें दलने, ऊखलमें कूटने, बुहारी देने, पानी भरने, कुंआ खुदाने, बाग लगाने आदिमें होजाती है।

(३) विरोधी हिंसा—यह वह हिंसा है जो विरोध करनेवालोंको रोकनेमें करनी पडती है। इसीलिये गृहस्थीको न्यायके रक्षार्थ कभी बड़े २ युद्ध करने पडजाते हैं। इनमें हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा है व आरंभी हिंसाका एक भाग है।

साधुको संकल्पी व तीनों प्रकारकी आरंभी हिंसाका त्याग होता है। गृहस्थीके संकल्पी हिंसाका त्याग व आरंभी हिंसाका त्याग नहीं होता है।

गृहस्थ श्रावकोंके चारित्र साधनकी ग्यारह श्रेणियां हैं। आठवीं श्रेणीका नाम **आरंभ त्याग प्रतिमा** है। इस प्रतिमाको धारण करते हुए गृहस्थ तीनों प्रकारकी आरम्भी हिंसाका त्यागी होजाता है। इसके पहले सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमातक गृहस्थीके आरंभी हिंसाका त्याग नहीं है। इन तीनों प्रकारकी उद्यमी, गृहारंभी, विरोधी हिंसामें गृहस्थको बहुत सम्हालकर वर्तना चाहिये। न्याय व धर्मको व उचित व्यवहारको रक्षित करते हुए चलना चाहिये।

जैन पुराणोक्त त्रेसठ महापुरुष।

जैन पुराणोंमें त्रेसठ महापुरुष हरएक कल्पकालमें इस आर्य-खण्डमें होते रहते हैं। चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ प्रतिनारायण, नौ नारायण, नौ बलभद्र ये सब क्षत्रिय होते हैं। सर्वही जैन धर्मी जन्मसे होते हैं। व सर्वही मोक्षगामी हैं। कितने ही उसी जन्मसे, कितने ही कितने जन्मोंमें निर्वाणपद पर पहुंचते हैं। तीर्थंकर सब ही उस ही शरीरसे मोक्ष होते हैं। तीर्थंकर व चक्रवर्ती आठ वर्षकी उमरमें श्रावकके एक देश पांच अणुव्रतरूप चारित्रको ग्रहण कर लेते हैं, युवापनमें राज्य करते हैं, दुष्टोंको दंड देते हैं, शत्रुओंको दमन करते है, सेना व सिपाही रखते हैं, भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें इस कल्पकालमें श्री रिषभदेव, अजितनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर आदि चौवीस तीर्थंकर हो गए हैं। इनमेंसे केवल पांचने कुमारावस्थामें राज्य त्याग कर साधुपद ग्रहण किया। अर्थात् श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरने विवाह न करके साधुपद धारण किया। शेष उन्नीस तीर्थंकरोंने राज्य किया, विवाह किया; गृहस्थ कर्तव्य पाला, क्षत्रीय धर्म किया। अंतमें राज्य त्यागकर साधु हुए। इनहीमेंसे तीन तीर्थंकर श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ व अरनाथ चक्रवर्तीपदके धारी भी हुए हैं। चक्रवर्ती भरतके छः खण्डोंको जीतते हैं। सेना लेकर दिग्विजय करने जाते हैं। उनके प्रभावसे सब राजागण वश होजाते हैं। ५—म्लेच्छ खण्ड एक आर्यखण्डके बत्तीस हजार मुकुटबंध राजा उनको नमन करते हैं। उन्होंने सेना व पुलिस रखकर सर्व योग्य

प्रबन्ध किया। वे कही हुई तीनों प्रकारकी हिंसाके त्यागी नहीं थे। गृहस्थावस्थामें केवल संकल्पी हिंसाके त्यागी थे। ये सम्राट् प्रजाको शस्त्र विद्या सिखाते थे।

ऋषभदेव पहले तीर्थंकर तब हुए थे जब आर्यखण्डमें भोग-भूमिके पीछे कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ।

श्री ऋषभदेवका काम। उन्होंने प्रजाको असि आदि छः कर्मोंसे आजीविका करना सिखाया था। प्रजाका विभाग उनकी योग्यतानुसार तीन वर्णोंमें कर दिया था। जो शस्त्र रखकर रक्षा करनेकी योग्यता रखते थे उनको क्षत्रिय वर्णमें, जो कृषि, वाणिज्य, मसिकर्मके योग्य थे, उनको वैश्य वर्णमें, जो शिल्प व विद्या कर्मसे आजीविका करनेयोग्य थे व सेवा कर्मके योग्य थे उनको शूद्र वर्णमें स्थापित किया था। राज्य दण्ड विधान जारी किया था।

उन ही के पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए थे। इन्होंने सेना लेकर दिग्विजय करके भरत क्षेत्रके छः खण्डोंको वश किया था। बड़े प्रभावशाली थे। इनके भाई बाहुबलिजी थे। यह वशमें न हुए तब चक्रवर्तीने युद्ध करके वश करना चाहा।

भरत बाहुबलि युद्ध।

भरतकी और बाहुबलिकी बहुत बड़ी सेना थी। युद्धकी तय्यारी होगई थी। तब दोनोंके मंत्रियोंने विचार किया कि युद्ध घोर हिंसाका कारण है। लाखों मानव व पशुओंका संहार होगा। कोई ऐसा उपाय निकाला जावे जो युद्ध न हो और दोनों भाई आपसमें निपट

लें, दोनों मंत्रियोंने तीन प्रकार युद्ध निश्चय किये—व्यायामयुद्ध, दृष्टि युद्ध, जलयुद्ध। भरत व बाहुबलि दोनों राजी होगए, सेनाको युद्ध करनेसे रोक दिया। दोनों भाई स्वयं व्यायाम करने लगे, दृष्टि मिलाने लगे, जलसे कलोल करने लगे। तीनोंमें भरतजी हार गए, बाहुबलिजी जीत गए। यह उदाहरण इसलिये दिया गया कि एक जैनी राजाका धर्म है कि विरोधी हिंसाको जहां तक हो बचावे। केवल लाचारीसे और कोई उपाय न होनेपर ही करें।

श्री रामचन्द्र और जैनधर्म।

जैन पुराणोंमें श्री रामचन्द्रको आठवां बलभद्र व लक्ष्मणको आठवां नारायण लिखा है व ये जन्मसे जैन धर्मके पालनेवाले थे ऐसा बताया है। श्रीरामचन्द्रजी श्रावकधर्मके पालनेवाले थे। न्याय मार्गी थे, जैन धर्मके अहिंसा तत्वको मान्य करते थे। संकल्पी हिंसाके त्यागी थे। आरंभीके त्यागी नहीं थे। जब रावण प्रतिनारायणने श्री रामचन्द्रकी स्त्री पतिव्रता सीताको छलसे हरण किया, उस समय श्री रामचन्द्रजीने बहुतसे अहिंसात्मक उपाय किये कि रावण सीताको दे दे परन्तु जब वह अहंकारके पर्वतसे नहीं उतरा और कुशीलका त्याग न करके कुशील वासनाको उत्तेजित करता रहा तब न्याय व धर्मकी रक्षार्थ रामचंद्रजीको हिंसात्मक प्रयोग करना पड़ा, विरोधी हिंसा करनी पड़ी। युद्धकी तैयारी करनेपर श्री रामचंद्रजीने श्री हनूमानको भेजा कि रावण हठको छोड़ देवे। जब उसने हठ नहीं छोड़ा तब रामचंद्रको सेना लेकर लंकापर चढ़ाई करनी पड़ी, रावणका वध करना पड़ा,

सीताकी रक्षा करनी पड़ी। यह कार्य गृहस्थ धर्मके अनुकूल ही किया। विरोधी हिंसाका गृही त्यागी नहीं होता है।

जैन पुराणोंमें श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके बाद ६२ वर्षमें तीन केवलज्ञानी हुए हैं। अन्तिम वीर वैश्य जंबूस्वामी। केवलज्ञानी श्री जंबूकुमारजी हुए हैं। अब वीर निर्वाण संवत २४६१ (सन् १९३९) है। यह जम्बूकुमार जैन कुलमें एक वैश्य श्री अरहन्तदास सेठके पुत्र थे। उस समय वैश्य पुत्र भी शस्त्रविद्या सीखते थे। यह युद्धकलामें बड़े निपुण थे। राजगृहीमें तब राजा श्रेणिक या विम्बसारका राज्य था। यह राज्यसभामें जाया करते थे। एक दफे यह एक राज्य शत्रु पर चढाई करने गए। युद्ध किया। ८००० आठ हजार योद्धाओंका संहार किया। विजयलक्ष्मी हस्तगत की। फिर जब त्यागी हो गए, तो उसी शरीरसे मोक्षका लाभ किया। महावीर स्वामीके पीछेका इतिहास भी जैन वीरोंके वर्णनसे भरा पड़ा है।

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् भारतवर्षके हुए हैं। सन् ई० से ३२० वर्ष पहले उन्होंने ग्रीक लोगोंका

चन्द्रगुप्त मौर्य। आक्रमण भारतपर रोका, वीरतासे लड़कर सेल्युकससे संधी की। उसने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्तको विवाही। इसकी आज्ञा सारे भारतमें चलती थी। यह अंतमें श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलीका शिष्य मुनि होगया व श्रवणबेलगोलामें गुरु भद्रबाहुका समाधिमरण कराया।

राजा खारवेल। राजा खारवेल मेघवाहन कलिंग देशका अधिपति बड़ा प्रतापशाली जैन राजा सन् ई० १५० वर्ष पहले हुआ है, इसने कई युद्ध किये। जैनधर्मका बड़ा भारी भक्त था। खंडगिरि उदयगिरि पर्वतोंपर सैकड़ों गुफाएं जैन साधुओंके ध्यानके लिये ठीक की। ये कटकके पास भुवनेश्वर स्टेशनसे ५—६ मील हैं। उनका चारित्र वहांकी हाथी-गुफाकी भीतपर अंकित हैं।

चामुण्डराय वीर मार्तण्ड। दक्षिणमें गंगवंशी राजाओंने मैसूर प्रांतमें व आसपास दूसरी शताब्दीसे लेकर आठवीं शताब्दी तक राज्य किया है। वे सब राजा जैनधर्मी थे। उनका एक बड़ा वीर सेनापति चामुंडराय था, जिसने कई युद्ध विजय करके वीर मार्तंड, समर परायण आदि पद प्राप्त किये थे। धर्मात्मा इतना था कि इसने श्रवणबेलगोलामें ५६ फूट ऊंची श्री बाहूबलि स्वामीकी मूर्ति स्थापित की। दशवीं शताब्दीमें प्रतिष्ठा कराई। यह बड़े तत्वज्ञानी व विद्याप्रेमी थे। इनके लिये श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तीने श्री गोमट्टसार ग्रन्थ रचा था। इनने स्वयं चारित्रसार लिखा है व कनडीमें स्वयं गोमटसारकी टीका लिखी थी व अन्य ग्रन्थ बनाए थे।

महाराजा अमोघवर्ष। दक्षिण हैदराबाद मान्यखेडकी तरफ राष्ट्रकूटोंका राज्य था। उनके कई राजा जैनी हुए हैं। प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुआ है। ६० साठ वर्ष तक न्यायपूर्वक राज्य किया। अंतमें यह स्वयं

श्री जिनसेनाचार्यका शिष्य मुनि होगया था। भारतवर्षके इतिहासमें जैन वीरोंका बहुत बड़ा हाथ रहा है। उदयपुरके राजा भामाशाह जैन थे जिसने करोडोंका धन दिया व स्वयं सेनामें शामिल होगया।

जैन ग्रन्थोंसे प्रगट है कि श्री महावीर स्वामीके समयमें तीन प्रकार जैन राजा भारतके भिन्न२ स्थानोंपर राज्य करते थे।

महावीरस्वामीके समयमें जैन राजा।

(१) (उत्तरपुराणसे)—मगधदेश राजगृही राजा बिम्बसार या श्रेणिक, (२) वैशालीनगरी सिंधुदेश, राजा चेटक, (३) वत्सदेश कौसांबी नगरके राजा शतानीक, (४) दशार्णवदेशके कच्छ नगरका राजा दशरथ (५) कच्छ देशके रौरव नगरका राजा उदयन, (६) हेमांगदेशके राजपुरका राजा सत्यंधर व पुत्र जीवंधरकुमार, (७) चंपानगरीका राजा श्वेतवाहन, (८) मगधदेशके सुप्रतिष्ठ नगरका राजा जयसेन, (९) विदेहदेशकी धरणी तिलका नगरीका राजा गोविंदराज (क्षत्रचूडामणि ग्रन्थसे) (१०) दक्षिण केरलका राजा मृगांक (श्रेणिकचरित्रसे), (११) कलिंगदेशके दंतपुरका राजा धर्मघोष (श्रेणिक चरित्रसे), (१२) भूमितिलकनगरका राजा वसुपाल (श्रे० च० से०), (१३) कौसांबीका राजा चन्द्रप्रद्योत (श्रे०च०से०), (१४) मणिवत देशके दारानगरका राजा मणिमाली (श्रे० च० से०), (१५) अवन्ती (मालवा) देशकी उज्जैनीका राजा अवनिपाल (धन्यकुमार चरित्रसे)

दक्षिण उत्तर कैनेड़ामें कादंब देशके अनेक राजा जैनी थे। जो दीर्घकालसे छठी शताब्दी तक राज्य करते रहे, राज्यधानी बनवासी थी। उत्तर कैनेडामें भटकल व जरसब्बामें जैन राजाओंने १७ वीं शताब्दीतक राज्य किया। सन् १४५० में चन्नभैरव-देवीका राज्य था, जिसने भटकलके दक्षिण पश्चिम एक पाषाणका पुल बनवाया था। गुजरातमें सूरतके पास रांदेरमें १३ वीं शताब्दी तक जैन राजाओंका राज्य था।

अनेक जैन राजा।

बम्बई प्रांतके बेलगांव जिलेमें राष्ट्र वंशने ८ वींसे १३ वीं शताब्दी तक राज्य किया। बहुतसे राजा जैन धर्मी थे। सौदत्तीमें उसी वंशके राजा शांतिवर्माने सन् ७८० में जैन मंदिर बनवाया। बेलगांवका किला व उसके सुंदर पाषाणके जैन मंदिर जैन राजाओंके बनवाए हुए हैं। धारवाड़ जिलेमें गंगवंशी जैन राजा नौमी दशवीं शताब्दीमें राज्य करते थे, चालुक्य व पल्लव वंशके अनेक राजा जैनी थे।

बुन्देलखण्डमें जबलपुरके पास त्रिपुरमें राज्यधानी रखनेवाले हैहय वंशी, कलचूरी या चेदी वंशके राजा सन् २३९ से १२ वीं शताब्दी तक राज्य करते थे। दक्षिणमें भी इनका राज्य था। इस वंशके अनेक राजा जैनी थे। मध्य प्रांतमें कई लाख जैन कलवार हैं वे इसी वंशके हैं।

गुजरातमें अणहिलवाड़ा पाटन प्रसिद्ध जैन राजाओंका स्थान रहा है। पाटनका संस्थापक राजा वनराज जैनधर्मी था। इसने

ई० ७८० तक राज्य किया। इसका वंश चावडा था जिसने ९५६ तक राज्य किया। फिर चालुक्य या सोलंकी वंशने सन् १२४२ तक राज्य किया। प्रसिद्ध जैन राजा मुलराज, सिद्धराज, व कुमारपाल हुए हैं।

११ से १७ शताब्दीके कुछ जैन राजा।

श्री भक्तामर काव्यका निर्माण राजा भोज धाराके समयमें ११ वीं शताब्दीके करीब श्री मानतुंगाचार्यने किया था, इसपर कथाग्रन्थ श्री सकलचन्द्र मुनिके शिष्य हूमड़ जातिके पं० रायमल्लने सं० १६६७में पूर्ण किया। इसमें काव्य मंत्रोंके लाभ उठानेवाले ५०० वर्षके भीतरके जैन राजाओंके वर्णन हैं। उनके नाम ये हैं:–

(१) अनहिलपाटनके राजा प्रजापाल, (२) चम्पापुरके राजा कर्ण, (३) अयोध्याके राजा महीपाल, (४) सगरपुरका राजा सागर, (५) पाटनका राजा कुमारपाल, (६) विशालाका राजा लोकपाल, (७) नागपुरका राजा नाभिराज, (८) तोड़ेशा सुनगरका राजा प्रजापति, (९) सूरीपुरका राजा जितशत्रु, (१०) गोदावरी तटके पावापुरके राजा हरि, (११) धारानगरीका राजा भूपाल, (१२) अंकलेश्वर (गुजरात) का राजा जयसेन, (१३) उज्जैनका राजा महिपाल, (१४) बनारसका राजा भीमसेन, (१५) पटनाका राजा धात्रीवाहन, (१६) मथुराका राजा रणकेतु, (१७) तामलुक (बंगाल) का राजा महेम, (१८) उज्जैनका दूसरा राजा नृपशेखर, (१९) अजमेरका राजा रणपाल पुत्र रणधीर।

हमारे रचित प्राचीन जैन स्मारक बम्बई व मद्रास प्रान्तके व मध्य व युक्त प्रान्तके बंगाल बिहारके पढ़नेसे जैन राजाओंका विशेष वर्णन मिलेगा।

उद्यमी, गृहारम्भी, विरोधी हिंसाका त्याग नहीं होनेसे ही जैन राजा राज्य कर सके थे।

जैनाचार्योंके वाक्य नीचे प्रमाण हैं:—

(१) प्राचीन ग्रंथ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें है—

नो वावरई सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो।
णिंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभो॥ ३३१॥
तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहिं णेव कारयदि।
कुव्वंतं पि ण इच्छदि पढमवयं जायदे तस्स॥३३२॥

भावार्थ—प्रथम अहिंसा अणुव्रत उसके होता है जो अपने आत्माके समान परकी आत्माओंको मानके दया सहित वर्तन करता है। महान आरम्भोंको छोड़ता हुआ निंदा गर्हा करता हुआ आवश्यक आरम्भ करता है। जो संकल्प करके मन वचन कायके द्वारा त्रस जंतुओंका न तो घात करता है न कराता है न घातकी अनुमोदना करता है।

आठमी प्रतिमाके पहले तक आरंभी हिंसा संभव है।

आरम्भ त्याग प्रतिमा।

जो आरंभं ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णो।
हिंसासंतट्ठमणो चत्तारंभो हवे सो हि॥ ३८५॥

भावार्थ—जो श्रावक हिंसासे भयभीत होकर न तो कोई

आरंभ व्यापार करता है न कराता है न करते हुएको अच्छा समझता है वह श्रावक आरंभ त्यागी है।

(१) श्री समंतभद्राचार्य श्री रत्नकरंडश्रावकाचारमें कहते हैं-

अहिंसा अणुव्रत।

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः॥ ५३॥

भावार्थ-जो मनवचन कायसे कृतकारित अनुमतिसे नौ प्रकार संकल्प करके (इरादा करके) त्रस जंतुओंको नहीं मारता है वह स्थूल वधसे विरक्त श्रावक प्रथम अहिंसा अणुव्रतधारी है ऐसा गणधरोंने कहा है।

आरम्भत्याग आठमी प्रतिमाका स्वरूप।

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः॥ १४४॥

भावार्थ-जो श्रावक प्राणघातके कारण सेवा, कृषि, वाणिज्य आदि आरम्भोंको छोड़ देता है वह आरम्भ त्यागी श्रावक है।

नोट-इससे सिद्ध है कि सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक केवल संकल्पी हिंसाका त्याग है। आरम्भी व विरोधी हिंसाका त्यागी नहीं है। यथाशक्ति बहुत कम करता है।

(२) प्रसिद्ध वसुनंदि श्रावकाचारमें है-

अहिंसा अणुव्रत—

जें तसकाया जीवा पुव्वुद्दिट्ठा ण हिंसियव्वा ते।
एइंदिया वि णिक्कारणेण पढमं वयं थूलं॥ २०८॥

अइ वुड्ढवालमूयंधवहिरदेसंतरीयरोइट्ठं ।

जहजोगं दायव्वं करुणादाणेति भणिऊण ॥२२९॥

भावार्थ—पहले कहे गए प्रमाण द्वेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत त्रस जंतुओंको पीड़ित न करना चाहिये। विना प्रयोजन एकेन्द्रियोंको भी न मारना चाहिये सो स्थूल अहिंसा अणुव्रत है।

अति वृद्ध, बालक, गूंगा, अंधा, बहिरा, परदेशी, रोगीको दयापूर्वक यथायोग्य दान करना चाहिये सो करुणादान है।

आरम्भ त्याग प्रतिमा।

जो किंचि गिहारंभं बहु योगं वा सया विवज्जेई।

आरंभे णि वहमई सो अट्ठमु सव्वम भणिऊ ॥

भावार्थ—जो आरम्भसे विरक्त होकर गृहसम्बंधी थोड़ा या बहुत आरम्भ व्यापार नहीं करता है वह श्रावक आठवीं प्रतिमाका धारी है।

(४) श्री चामुण्डराय कृत चारित्रसारमें—

अहिंसा अणुव्रत—

"सर्वसावद्यविरतेरसंभवात् आणुव्रतं। द्वींद्रियानां जंगम प्राणिनां प्रमत्तयोगेन प्राणव्यपरोपणान्मनोवचनकायैश्च।"

सर्व पापोंसे गृहस्थी छूट नहीं सक्ता है, इसलिये अणुव्रत पालता है। द्वेंद्रियादि त्रस प्राणियोंका घात प्रमाद सहित मन वचन कायसे नहीं करता है।

आठमी प्रतिमा—

"आरम्भविनिवृत्तेऽसिमसिकृषिवाणिज्यप्रमुखादारंभात् प्राणातिपातहेतो विरतो भवति।"

भावार्थ–आरम्भसे विरक्त होकर असि (शस्त्र), मसि, कृषि, व्यापारादि आरम्भोंसे विरक्त होजाता हैं क्योंकि इन आरम्भोंसे प्राणोंका घात होता है।

नोट–इससे सिद्ध है कि सातवीं प्रतिमातक असिकर्म अर्थात् सिपाहीका काम रक्षाका व युद्धका काम श्रावक कर सक्ता है। आरम्भीहिंसा आठवींसे छूट जायगी।

(५) १० वीं शताब्दीके श्री अमीतगति आचार्य श्रावकाचारमें कहते हैं–

अहिंसा अणुव्रत—

हिंसा द्वेधा प्रोक्ताऽरंभानारम्भजत्वतोदक्षैः।
गृहवासतो निवृत्तो द्वेधापि त्रायते तां च ॥ ६ ॥ छट्टापर्व।
गृहवाससेवनरतो मंदकषायः प्रवर्ततारम्भाः।
आरम्भजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम् ॥ ७ ॥
देवातिथिमंत्रौषधपित्रादिनिमित्ततोऽपि संपन्ना।
हिंसा धत्ते नरके किं पुनरिह नान्यथा विहिता ॥ २९ ॥

भावार्थ–हिंसा दो प्रकारकी है—एक आरभी दूसरी अनारंभी या संकल्पी जो घरके वाससे विरक्त हैं वे दोनों ही प्रकारकी हिंसासे बचते हैं। परन्तु जो घरमें रहते हैं गृहसेवी हैं वे मंदकषायसे आरंभ करते हैं, वे नियमसे आरम्भी हिंसा छोडनेको शक्य नहीं है।

देवके लिये, अतिथिके लिये, मंत्र व औषधिके लिये व पितरोंके लिये जो प्राणियोंकी (पशुओंकी) हिंसा करता है वह नरकमें जाता है। हिंसा करनेसे अच्छा फल नहीं होसक्ता है।

आठमी प्रतिमा—

विलोक्य षड्जीवविघातमुच्चेरारंभमत्यस्यति यो विवेकी।
आरंभमुक्तः स मतो मुनीन्द्रै र्विरागिकः संयमवृक्षसेकी ॥७४॥

—सातवां सर्ग।

भावार्थ—जो विवेकी, वैराग्यवान, संयम रूपी वृक्षकी सेवा करनेवाला आरम्भमें छः कायके जीवोंकी विराधना देखकर सर्व आरम्भको छोड़ देता है, वह आरम्भ त्यागी श्रावक है, ऐसा गणधरोंने लिखा है।

(६) दशवीं शताब्दीके श्री अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय ग्रन्थमें कहते हैं—

अहिंसा अणुव्रत—

धर्ममहिंसारूपं संश्रृण्वन्तोऽपि ये परित्यक्तुम्।
स्थावरहिंसामसहास्त्रसहिंसां तेऽपि मुञ्चन्तु ॥ ७५ ॥
स्तोकैकेन्द्रियाघताद्‌गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणाम्।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ—धर्म अहिंसामय है। जो ऐसे धर्मको सुन करके भी गृहस्थ श्रावक स्थावरोंकी हिंसाको नहीं छोड़ सक्ते हैं उनको त्रसकी हिंसाको छोड़ना ही चाहिये।

योग्य इन्द्रियोंके विषयोंको रखनेवाले गृहस्थियोंको योग्य है कि स्थावरोंकी हिंसा भी थोड़ी प्रयोजनभूत करे, इसके सिवाय सर्व स्थावरोंके वधसे दूर रहें।

(७) १३ वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधर सागारधर्मामृतके चतुर्थ अध्यायमें कहते हैं—

अहिंसा अणुव्रत—

शान्ताद्यष्टकषायस्य सङ्कल्पैर्नवभिस्त्रसान् ।
अहिंसतो दयार्द्रस्य स्यादहिंसेत्यणुव्रतम् ॥ ७ ॥
इत्यनारम्भजां जह्याद्धिंसामारम्भजां प्रति ।
व्यर्थस्थावरहिंसावद् यतनामावहेद्गृही ॥ १० ॥
गृहवासो विनाऽऽरम्भान्न चारम्भो विना वधात् ।
त्याज्यः स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषाङ्गिकः ॥१२॥

टीका—आरम्भजां—कृष्याद्यारम्भसंभाविनीं । तस्मात् त्याज्यः कोऽसौ मुख्यः इमं जंतुमासाद्यार्थित्वेन हन्मीति सांकल्पप्रभवः यत्नात्, आरभः त्यक्तुमशक्यः आनुषंगिकः कृष्यादौ क्रियमाणे संभवम् ।

भावार्थ—जिसके अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यान आठ कषायें उपशम होगईं हो, ऐसा दयावान श्रावक संकल्प करके नौ प्रकारसे त्रस प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता है सो अहिंसा अणुव्रत है। गृहस्थी संकल्पी त्रस हिंसा छोड़ दे। व्यर्थ स्थावरकी हिंसा न करे। वैसे ही व्यर्थ खेती आदिके आरम्भकी हिंसा भी न करे। क्योंकि गृहवास आरम्भके विना हो नहीं सक्ता है। आरम्भ व घरके विना हो नहीं सक्ता है। इसलिये गृहस्थीको संकल्पी हिंसा तो छोडनी ही चाहिये। मैं इस प्राणीको मार डालूं तो ठीक है ऐसा संकल्प करके हिंसा कभी न करें। खेती आदि आरम्भमें होनेवाली हिंसा लाचारीसे छूटना शक्य नहीं है।

आठमी प्रतिमा—

निसदसनिष्ठोऽङ्घिघातान्नत्वात् करोति न ।
न कारयति कृष्यादीनारंभविरतस्त्रिधा ॥ २१ ॥

भावार्थ—प्राणियोंके घात होनेके कारण जो मनवचन कायसे खेती आदि आरम्भोंको न करता है न कराता है वह आठमी प्रतिमाधारी श्रावक है ।

(८) बादशाह अकबरके समयमें पं० राजमल्लजी पंचाध्यायीमें कहते हैं—कि रक्षार्थ विरोधी हिंसा करनी पड़ती है—

वात्सल्यं नाम दासत्वं सिद्धार्हद्बिम्बवेश्मसु ।
संघे चतुर्विधे शास्त्रे स्वामिकार्ये सुभृत्यवत् ॥ ८०७ ॥
अर्थादन्यतमस्योच्चैरुद्दिष्टेषु स दृष्टिमान् ।
सत्सु घोरोपसर्गेषु तत्परः स्यात्तदत्यये ॥ ८०८ ॥
यद्वा नह्यात्मसामर्थ्यं यावन्मन्त्रासिकोशकम् ।
तावद् दृष्टुं च श्रोतुं च तद्बाधां सहते न सः ॥८०९॥

भावार्थ-सिद्धोंकी व अर्हन्तोंकी मूर्तियोंकी व मंदिरोंकी व चार प्रकार संघकी व शास्त्रोंकी भक्ति करना वात्सल्य है। जैसे नौकर स्वामीका काम करता है । यदि उनमेंसे किसीपर घोर उपसर्ग आपड़े तो सम्यग्दृष्टी उसके दूर करनेमें अपना कर्तव्य समझे । जबतक मंत्र, शास्त्र व खजाना हो तबतक अपनी शक्तिसे उसको हटावे । उपसर्ग देखकर व सुनकर श्रावक कभी उसे सहन नहीं कर सक्ता है ।

पं० राजमल्लजी ज्ञानानंद श्रावकाचारमें लिखते हैं–

अहिंसा अणुव्रत—

चलन हलनादि क्रिया विषै या भोग संजोगादि क्रिया विषैं संख्यात असंख्यात जीव त्रस और अनंत निगोद जीवकी हिंसा होय है परन्तु याके जीव मारवाको अभिप्राय नाहीं। हलन चलनादि क्रियाको अभिप्राय है। अर या क्रिया त्रस जीवकी हिंसा विना बनै नाहीं, तातैं याकू स्थूलपने त्रस जीवकी रक्षा कहिये और पांच स्थावरकी हिंसाका त्याग है नाही तौभी विनाप्रयोजन स्थावर जीवका स्थूलपने रक्षक ही है तातैं याको अहिंसा व्रतका धारक कहिये।

आठमी प्रतिमा—

यहां व्यापार रसोई आदि आरम्भ करनेका त्याग किया। दूसरे घर वा अपने घर न्योता वा बुलावा जीमे है।

(९) ८वीं शताब्दीके श्री जिनसेनाचार्य महापुराणमें लिखते हैं–

क्षायिक सम्यग्दृष्टी ऋषभदेव तीर्थंकरने क्षत्रियवर्ण स्थापित किया।

स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजत् विभुः।
क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रिया शस्त्रपाणयः ॥२४३॥१६॥

भावार्थ–अपनी भुजाओंसे शस्त्र धारण कर सामर्थ्यवान् ऋषभने क्षत्रियोंको पैदा किया। अर्थात् जो रक्षक होनेयोग्य थे इनको हाथमें शस्त्र देकर रक्षामें नियुक्त करके उनको क्षत्रिय नाम दिया।

भरतचक्रीकी दिनचर्या—

तद्भव मोक्षगामी सम्यग्दृष्टी, ऋषभके पुत्र भरत चक्रवर्तीकी दिनचर्या जाननेयोग्य है ॥ पर्व ४१ ॥

व्रतानुपालनं शीलं व्रतान्युक्तान्यगारिणां।
स्थूलहिंसाविरत्यादिलक्षणानि च लक्षणैः ॥ ११० ॥
सभावनानि तान्येष यथायोगं प्रपालयन्।
प्रजानां पालकः सोऽभूद्धौरेयो गृहमेधिनां ॥ १११ ॥
पर्वोपवासमाध्याय जिनागारे समाहितः।
कुर्वन्सामायिकं सोऽधात् मुनिवृत्तं च तत्क्षणं ॥ ११२ ॥
धार्मिकस्यास्य कामार्थचिंताऽभूदानुषंगिकी।
तात्पर्य त्वभवत्कर्में कृत्स्नश्रेयोऽनुबन्धिनि ॥ ११९ ॥
प्रातरुत्थाय धर्मस्थैः कृतधर्मानुचिंतनः।
ततोऽर्थकामसंपत्ति सहायात्यैर्न्यरूपयत् ॥ १२० ॥
तल्पादुत्थितमात्रोऽसौ संपूज्य गुरुदैवतं।
कृतमंगलनेपथ्यो धर्मासनमधिष्ठितः ॥ १२१ ॥
प्रजानां सदसद्वृत्तचिंतनैः क्षणमासितः।
तत आयुक्तकान् स्वेषु नियोगेष्वन्वशाद्विभुः ॥ १२२ ॥
नृपासनमथाध्यास्य सभासद्मध्यगः।
नृपान् संभावयामास सेवावसरकांक्षिणः ॥ १२३ ॥
कलाविदश्च नृत्यादिदर्शनैः समुपस्थितान्।
पारितोषिकदानेन महता समतर्पयत् ॥ १२६ ॥

ततो विसर्जितास्थानः प्रोत्थाय नृपविष्टरात् ।
स्वेच्छा विहारमकरोद्विनोदैः सुकुमारकैः ॥ १२७ ॥
ततो मध्यंदिनेऽभ्यर्णे, कृतमज्जनसंविधिः ।
तनुस्थितिं स निर्वर्त्य निरविक्षत्प्रसाधनम् ॥ १२८ ॥
चामरोत्क्षेपतांबूलदानसंवाहनादिभिः ।
परिचेरुरुपेत्यैनं परिवारांगना स्वतः ॥ १२९ ॥
ततो भुक्तोत्तरास्थाने स्थितः कतिपयैर्नृपैः ।
समं विदग्धमंडल्या विद्यागोष्ठीरभावयत् ॥ १३० ॥
ततस्तुर्यविशेषेऽह्नि पर्यटन्मणिकुट्टिमे ।
वीक्षते स्म परां शोभामभितो राजवेश्मनः ॥ १३१ ॥
रजन्यामपि यत्कृत्यमुचितं चक्रवर्तिनः ।
तदाचरन् सुखेनैष त्रियानामत्यवाहयत् ॥ १३५ ॥
कदाचिदुचितां वेलां नियोग इति केवलं ।
मंत्रयामास मन्त्रज्ञैः कृतकार्योऽपि चक्रभृत् ॥ १३६ ॥
आयुर्वेदे स दीर्घायुरायुर्वेदो नु मूर्तिमान् ।
इति लोको निरारेकं श्लाघते स्म निधीशिनं ॥ १४५ ॥
राजसिद्धांततत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
परिख्यातः कलाज्ञाने सोऽभून्मूर्ध्नि सुमेधसां ॥ १५४ ॥
लक्ष्मीवाग्वनितासमागमसुखस्यैकाधिपत्यं दधत् ।
दूरोत्सारितदुर्णयः प्रशमिनीं तेजस्वितामुद्वहन् ॥
न्यायोपार्जितवित्तकामघटनः शस्त्रे च शास्त्रे कृती ।
राजर्षिः परमोदयो जिनजुषामग्रसरः सोऽभवत् ॥१५८॥

भावार्थ—भरत चक्रवर्ती गृहस्थीके स्थूल अहिंसा सत्यादि पांच व्रतोंको पालता था। भावनाओंके साथ यथायोग्य व्रतोंको पालता हुआ प्रजाका भी पालन करता था। वह भरत गृहस्थियोंमें मुख्य था। श्रावकके व्रत यथासंभव पालता था। पर्वोंके दिनोंमें प्रोषधोपवास करके जिनमंदिरमें रहता था। भलेप्रकार निश्चित होकर समायिक करता था। धर्मको साधन करनेवाला भरत धर्मके साथ २ अर्थ व काम पुरुषार्थकी सिद्धिकी भी चिंता करता था। प्रयोजन यह है कि धर्मके सेवनसे सर्व कल्याण होता है ऐसा मानता था। सवेरे ही उठ कर धर्मात्माओंके साथ धर्मकी चिंता करता था। फिर अर्थ व कामकी संपत्तिका विचार करता था। सवेरे ही शय्यासे उठकर देव गुरुकी पूजा करता था। फिर मंगलीक कार्य करके धर्मासन पर बैठता था। प्रजाके खोटे खरे चारित्रको विचार कर लोगोंको अपने अपने कामोंमें जोड़ता था। फिर सभामें जाकर राजसिंहासन पर बैठकर राजाओंको यथोचित सेवा बताता था। वह कलाओंका ज्ञाता था। कला व नाच गाना बतानेवालोंको इनाम देकर संतोषित करता था। फिर सभाको विदा करके राजसिंहासनसे उठकर कुमारोंके साथ इच्छापूर्वक विहार करता था, आनन्द लेता था।

फिर मध्य दिन निकट आनेपर स्नान करके शरीरको वस्त्राभूषणसे भूषित करता था तब परवारकी स्त्रियां पान खिला कर व चमरादि करके सेवा करती थीं। फिर भोजन करता था। बाद कुछ राजाओंके साथ विद्वानोंके समक्ष चर्चा करता था। फिर कुछ दिन शेष रहनेपर राजमहलकी शोभा देखता हुआ भूमिपर

विहार करता था। रात्रिको उचित कर्तव्य करके सुखसे रात्रिको बिताता था। कभी रात्रिको उचित समयपर मंत्रियोंसे मंत्र करता था। वह आयुर्वेदको जाननेवाला दीर्घायु था। लोग उसकी सन्देह रहित प्रशंसा करते थे। वह भरत राज्य सिद्धान्तके तत्वका ज्ञाता था। धर्मशास्त्रोंके मर्मका जाननेवाला था। कलाओंके ज्ञानमें प्रसिद्ध था।

भरतकथित क्षत्रिय कर्त्तव्य।

वह भरतचक्रवर्ती लक्ष्मी, वाणी, व स्त्रियोंके समागमके सुखका भोक्ता था। खोटी नीतिको दूर रखता था, शांतिकारक तेजको धारता था, न्यायसे धन व कामभोगोंका संग्रह करता था, शस्त्रविद्या व शास्त्रमें निपुण था, वह राजाओंमें ऋषिके समान परम पुण्यात्मा था, व जिनभक्तोंमें मुख्य था।

नोट-चौथे कालमें दिनमें एक दफे ही भोजन था। भरत शस्त्रकलामें भी निपुण था। पर्व ४२ में भरतने क्षत्रिय कर्त्तव्य बताया उसका वर्णन नीचे प्रकार है—

कृतात्मरक्षणश्चैव प्रजानामनुपालने।
राजा यत्नं प्रकुर्वीत राज्ञां मौलो ह्ययं गुणः॥१३७॥
कथं च पालनीयास्ताः प्रजाश्चेत्तत्प्रवंचनं।
पुष्टं गोपालदृष्टांतमूरीकृत्य विवृण्महे॥ १३८॥
गोपालको यथा यत्नाद् गाः संरक्षत्यतंद्रितः।
क्ष्मापालश्च प्रयत्नेन तथा रक्षेन्निजाः प्रजाः॥ १३९॥
तद्यथा यदि गौः कश्चिदपराधी स्वगोकुले।
तमंगच्छेदनाद्युग्रदंडस्तीव्रमयोजयन्॥ १४०॥

पालयेदनुरूपेण दंडेनैव नियंत्रयंन्।
यथा गोपस्तथा भूपः प्रजाः स्वाः प्रतिपालयेत् ॥१४१॥
तीक्ष्णदण्डो हि नृपतिस्तीव्रमुद्वेजयेत्प्रजाः।
ततो विरक्तप्रकृतिं जह्युरेनममूः प्रजाः ॥ १४२ ॥
प्रभग्नचरणं किंचिद्गोद्रव्यं चेत्प्रमादतः।
गोपालस्तस्य संधानं कुर्याद्बंधाद्युपक्रमैः ॥ १४६ ॥
वद्धाय च तृणाद्यस्मै दत्वा दार्ढ्यें नियोजयेत्।
उपद्रवांतरेऽप्येवमाशु कुर्यात्प्रतिक्रियां ॥ १४७ ॥
यथा तथा नरेन्द्रोऽपि स्ववले व्रणितं भटं।
प्रतिकुर्याद्भिषग्वर्यान्नियोज्यौषधसम्पदा ॥ १४८ ॥
यथैव खलु गोपालो संध्यस्थिचलने गवां।
तदस्थि स्थापयन्प्राग्वत्कुर्याद्योग्यां प्रातिक्रियां ॥ १५० ॥
तथा नृपोऽपिसंग्रामे भृत्यमुख्ये व्यसौ सति।
तत्पदे पुत्रमेवास्य भ्रातरं वा नियोजयेत् ॥ १५१ ॥
यथा च गोपो गोयूथं कंटकोपलवर्जिते।
शीतातपादिबाधाभिरुज्झिते चारयन्वने ॥ १६१ ॥
पोषयत्यतियत्नेन तथा भूपोऽप्यविप्लवे।
देशे स्वानुगतं लोकं स्थापयित्वाऽभिरक्षयेत् ॥ १६२ ॥
राज्यादिपरिवर्तेऽस्य जनोऽयं पीड्यतेऽन्यथा।
चौरैर्डामरकैरन्यैरपि प्रत्यंतनायकैः ॥ १६३ ॥

प्रसह्य च तथाभूतान् वृत्तिच्छेदेन योजयेत ।
कंटकोद्धरणेनैव प्रजानां क्षेमधारणं ॥ १६४ ॥
तथा भूपोऽप्यतंद्रालुर्भक्तग्रामेषु कारयेत् ।
कृषिं कर्मांतिकैर्बीजप्रदानाद्यैरुपक्रमैः ॥ १७६ ॥
देशोपि कारयेत्कृत्स्ने कृषिं सम्यक्कृषिबलैः ।
धान्यानां संग्रहार्थ च न्याय्यमंशं ततो हरेत ॥ १७७ ॥
सत्येवं पुष्टतंत्रः स्याद्भांडागारादिसंपदा ।
पुष्टो देशश्च तस्यैवं स्याद्धान्यैराशितंभवैः ॥ १७८ ॥
अन्यच्च गोधनं गोपो व्याघ्रचोराद्युपद्रवात् ।
यथा रक्षत्यतन्द्रालुर्भूपोऽप्येवं निजाः प्रजाः ॥ १९३ ॥
यथा च गोकुलं गोपत्यायाते संदिदृक्षया ।
सोपचारमुपेत्यैनं तोषयेद्धनसंपदा ॥ १९४ ॥
भूपोऽप्येवं बली कश्चित्स्वराष्ट्रं यद्यभिद्रवेत ।
तदा वृद्धैः समालोच्य संदध्यात्पणबंधतः ॥ १९५ ॥
जनक्षयाय संग्रामो बह्वपायो दुरुत्तरः ।
तस्मादुपप्रदानाद्यैः संधेयोऽरिर्बलाधिकः ॥ १९६ ॥
राजा चित्तं समाधाय यत्कुर्याद्दुष्टनिग्रहं ।
शिष्टानुपालनं चैव तत्सामंजस्यमुच्यते ॥ १९९ ॥
द्विषंतमथवा पुत्रं निगृह्णन्निग्रहोचितं ।
अपक्षपतितो दुष्टमिष्टं चेच्छन्ननागसं ॥ २०० ॥

मध्यस्थवृत्तिरेवं यः समदर्शी समंजसः।
समंजसत्वसद्भावः प्रजास्वविषमेक्षिता ॥ २०१ ॥
गुणेनैतेन शिष्टानां पालनं न्यायजीविनां।
दुष्टानां निग्रहं चैव नृपः कुर्यात्कृतागसां ॥ २०२ ॥
दुष्टा हिंसादिदोषेषु निरताः पापकारिणः।
शिष्टास्तु क्षांतिशौचादिगुणैर्धर्मपरा नराः ॥ २०३ ॥

भावार्थ—राजाका यह मुख्य गुण है कि वह अपना रक्षण करे तथा प्रजाके पालनमें प्रयत्न करे। राजा प्रजाको कैसे पाले, इसके वर्णनके लिये ग्वालेका दृष्टांत देकर कहा जाता है। जैसे ग्वाला आलस्य छोड़कर गायोंकी रक्षा करता है वैसे ही राजाको प्रजाकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। यदि गौ सम्प्रदायमें कोई गौ अपराध करे तो ग्वाला तीव्र दंड देकर ठीक करता है। उसी तरह राजाको अपराधीको दंड देकर प्रजाका पालन करना चाहिये। परन्तु राजा ऐसा तीव्र दंड नहीं देता है, जिससे प्रजा आकुलित होकर राजासे विरुद्ध हो जावे व राजाका संग छोड़ दे। यदि प्रमादसे गायका चरण टूट जावे तो गोपालक उसको तृणादिसे दृढ़ बांधकर ठीक करता है। तथा गायोंपर और कोई उपद्रव आ जावे तो उसको दूर करनेका उपाय करता है वैसे ही राजा भी अपनी सेनामें रोगी व घायल योद्धाका इलाज उत्तम वैद्योंसे करावे। जैसे ग्वाला गायोंकी हड्डी संधि चल जानेपर इसको ठीक स्थापित करके उपाय करता है वैसे राजा भी युद्धमें किसी मुख्य सिपाहीके मरनेपर उसके पदपर उसके पुत्रको या भाईको स्थापित

करता है। जैसे ग्वाला गायोंको ऐसे वनमें चरनेको ले जाता है जहां कांटे व पत्थर न हो व शरदी गर्मीकी बाधा न हो वैसे ही राजा शंकारहित देशमें अपने सेवकोंको नियत करके उसकी रक्षा करता है। यदि राज्यादिके बिगड़नेपर प्रजाको पीडा हो व चोर, डाकू सतावें तो उनकी रक्षा करता है, उन कांटोंको निकाल देता है तब प्रजाका कल्याण होता है। राजाका कर्त्तव्य है कि आलस्य छोडकर ग्रामोंका विभाग करके किसानोंको बीज देकर खेती कराके सर्व देशमें किसानोंसे भलेप्रकार खेती करावे तथा धान्यका संग्रह करनेके लिये न्याय पूर्वक खेतीका कुछ भाग ग्रहण करें। इस तरह राज्यके भंडारको मजबूत रक्खें। धान्यके भण्डारसे ही देश पुष्ट रहता है। जैसे गोपालक गायोंको शेर व चोरोंके उपद्रवसे बचाता है वैसे ही राजा भी अपनी प्रजाकी रक्षा करें। जैसे ग्वाला गायोंके मालिकके आनेपर उसको संतोषित रखता है वैसे राजा भी करें। यदि कोई बलवान राजा अपने राज्यमें उपद्रव करें तो वृद्ध पुरुषोंसे सम्मति करके उसको द्रव्य देकर संधि करले। क्योंकि बलवानके साथ युद्ध करनेपर जनोंका नाश होगा, बहुत हानि होगी, जीतना शक्य नहीं है तब द्रव्यादि देकर बलवानके साथ मेल करले। राजाका यही कर्तव्य है कि दुष्टोंका निग्रह चित्त लगाकर करे व सज्जनोंका पालन करे। राजा पक्षपात रहित होकर अपने दोषी पुत्रको भी दण्ड देवे, अपराध रहितको चाहे। राजाको मध्यस्थवृत्ति या पक्षपात रहित स्वभाव रखकर समदर्शी रहना चाहिये, सदा प्रजाका भला चाहे।

इस यथार्थ गुणसे न्यायसे चलनेवाले सज्जनोंका पालन करे व अपराधी दुष्टोंका निग्रह करें। जो हिंसादि दोषोंमें लीन अपराधी हैं, दुष्ट हैं, जो क्षमा, संतोष, शौच आदि गुणोंमें लीन धर्मात्मा हैं वे सज्जन हैं।

भरत बाहुबलि युद्ध—

भरत बाहुबलि युद्धकी बात पर्व ३६ में इसतरह है—

षडंगबलसामग्र्या संपन्नः पार्थिवैरमा।
प्रतस्थे भरताधीशो निजानुजजिगीषया ॥ ५ ॥
विरूपकमिदं युद्धमारब्धं भरतेशिना।
ऐश्वर्यमददुर्वाराः स्वैरिणः प्रभवो यतः ॥ २७ ॥
तन्माभूदनयोर्युद्धं जनसंक्षयकारणं।
कुर्वतु देवताः शांतिं यदि सन्निहिता इमाः ॥ ३१ ॥
इति माध्यस्थवृत्त्यैके जनाःश्लाघ्यं वचो जगुः।
पक्षपातहताः केचित्स्वपक्षोत्कर्षमुज्जगुः ॥ ३३ ॥
तावश्च मंत्रिणो मुख्याः संप्रधार्यावदन्निति।
शांतये नानयोर्युद्धं ग्रहयोः क्रूरयोरिव ॥ ३८ ॥
अकारणरणेनालं जनसंहारकारिणा।
महानेवमधर्मश्च गरीयांश्च यशोवधः ॥ ४१ ॥
बलोत्कर्षपरीक्षेयमन्यथाऽप्युपपद्यते।
तदस्तु युवयोरेव मिथो युद्धं त्रिधात्मकं ॥ ४१ ॥

इत्युक्तौ पार्थिवैः सर्वैः सोपरोधैश्च मंत्रिभिः।
तौ कृच्छ्रात्प्रत्यपत्सातां तादृशं युद्धमुद्धतौ ॥ ४४ ॥
जलदृष्टिनियुद्धेषु योऽनयोर्जयमाप्स्यति।
स जयश्रीविलासिन्याः पतिरस्तु स्वयंवृतः ॥ ४५ ॥

भावार्थ–भरतचक्रवर्ती छोटे भाई बाहुबलीसे लड़नेके लिये छः प्रकारी सेना व राजाओंको लेकर तय्यार होगया। मध्यस्थ स्वभाववाले लोगोंने ऐसे प्रशंसनीय वचन कहे कि भरतचक्रीने यह युद्ध भयानक ठाना है। सच है धनके मदमें चूर राजा लोग इच्छानुसार काम करने लगते हैं। इसलिये ऐसा हो कि मानवोंके नाशका कारण यह युद्ध न हो। यदि कोई देवता निकट हो वे शांति कर दें। दूसरे पक्षपाती लोगोंने यही कहा कि भरतका पक्ष प्रबल है, भरतकी विजय होगी। इतनेमें भरत व बाहुबलिके मंत्रियोंने विचारकर कहा कि इन दोनोंका युद्ध छिड़ जानेपर जल्दी शान्त होना कठिन है व विना कारण जन–नाशकारी युद्ध न हो तो ठीक क्योंकि इसमें अधर्म भी है, यशकी हानि भी है व इन दोनोंके बलकी परीक्षा दूसरे प्रकारसे भी होसक्ती है, दोनोंसे कहा व दुसरे राजाओंने समझाया कि तीन प्रकार युद्ध होजावे। दोनोंने यह बात स्वीकार करली कि जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्धमें जो जीत जावे उसकी विजय हो जायगी।

नोट-इससे सिद्ध है कि तत्वज्ञानी जैनधर्मी भरत भी युद्धको तैयार था तथा यह भी जैनधर्मी विचारते थे कि विना युद्धके काम चल जावे तो युद्धकी घोर हिंसा न किया जावे।

सुलोचना चरित्रसे सिद्ध है कि काम पड़नेपर स्त्रियां भी सिपाहीका काम करने लगती थीं व युद्ध

स्त्रियां सिपाही। नित्य धर्म साधनेके पीछे नियुक्त समयपर होता था। पर्व ४४—

काशीराजस्तदाकर्ण्य विषादचलिताशयः।
महामोहाहितो वाऽसीद्दुष्कार्ये को न मुह्यति ॥ ९० ॥
योषितोऽप्यभटायंत पाटवात्संयुगं प्रति।
ततः प्रतिबकात्तत्र भूयांसो वा पदातयः ॥ ९९ ॥
शयित्वा वीरशय्यायां निशां नीत्वा नियामिनः।
स्नात्वा संतर्पिताशेषदीनानाथवनीपकाः ॥ ११८॥
अंचित्वा विधिना स्तुत्वा जिनेन्द्रांस्त्रिजगन्नतान्।
अतिष्ठन्नायकाः सर्वे परिच्छिद्य रणोन्मुखाः ॥ ११९ ॥

भावार्थ—काशीके राजा अकंपनने जब यह सुना कि जयकुमारके गलेमें माला डालनेपर भरतका पुत्र अर्ककीर्ति क्रोधित होगया है तब उसको बहुत रंज हुआ। महान् मोहके उदयसे व न्याय विरुद्ध काम होता देखकर मोह हो ही जाता है। अकंपन व जयकुमारकी सेना कम थी तब वहांकी स्त्रियां भी योद्धा बन गईं तब उनकी सेना शत्रुसे अधिक होगई। योद्धा वीरोंने रातको नियमित रूपसे वीर शय्यामें आराम किया। सवेरे स्नान करके दीन अनाथ याचकोंको दान दिया व तीन लोक पूज्य जिनेन्द्रोंकी स्तुति सहित पूजन की। फिर वे सब राजाके सामने आगए।

ऋषभदेव कर्मप्रवर्तक।

(१०) हरिवंशपुराण श्री जिनसेनकृत शाका ८५१–

श्री ऋषभदेवने प्रजाको धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थका साधन बताया।

सर्ग ९—

सर्वानुपदिदेशासौ प्रजानां वृत्तिसिद्धये।
उपायान् धर्मकामार्थान् साधनानपि पार्थिवः॥ ३४॥
असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि।
षट्कर्म शर्मसिद्ध्यर्थं सोपायमुपदिष्टवान्॥ ३५॥
पशुपाल्यं ततः प्रोक्तं गोमहिष्यादिसंग्रहः।
वर्जनं क्रूरसत्त्वानां सिंहादीनां यथायथं॥ ३६॥
क्षत्रियाः शततस्त्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः।
शूद्राः शिल्पादिसम्बन्धाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः॥३९॥

भावार्थ–ऋषभदेव राजाने सर्व मानवोंको प्रजाकी आजीविकाकी सिद्धिके लिये उपायोंका उपदेश किया। धर्म, अर्थ, काम तीन पुरुषार्थ व उनके साधन बताए। असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, विद्या इन छः कर्मोंको सुखकी सिद्धिके लिये व इनके उपायोंको बताते हुए उपदेश किया। गाय भैंसादि पशुओंके पालनेका व सिंहादि क्रूर प्राणियोंसे बचनेका उपाय कहा। हानिसे बचानेके लिये क्षत्रिय वर्ण, व्यापारके लिये वैश्य वर्ण, शिल्पादिके लिये शूद्र वर्ण ऐसे तीन वर्ण स्थापित किये।

नोट–तीर्थंकर भगवानने ही गृहस्थ कर्तव्य बताया। उसमें शास्त्रप्रयोग भी समझाया, रक्षाका उपाय बताया।

भरतकी दिग्विजय—

भरत चक्रवर्तीका विजय वहां इसतरह कहा है। सर्ग ११

अथ कृत्वात्मजोत्पत्तौ भरतः सुमहोत्सवं।
कृतचक्रमहोऽयासीत् षट्खण्डविजिगीषया ॥ १ ॥
चतुरंगमहासेनो नृपचक्रेण संगतः।
अग्रप्रस्थितचक्रेण युक्तो दिक्चक्रिणां नृणां ॥ २ ॥
म्लेच्छराजसहस्राणि वीक्ष्यापूर्वाबिरूथिनीं।
क्षुभितान्यभिगम्याशु योधयामासुरश्रमात् ॥ ३० ॥
ततः क्रुद्धो युधि म्लेच्छैरयोध्यो दंडनायकः।
युद्ध्वा निर्धूय तानाशु दध्रे नाभार्थसंगतं ॥ ३१ ॥
विजित्य भारतं वर्षं स षट्खंडमखंडितं।
षष्टिवर्षसहस्रैस्तु विनीतां प्रस्थितः कृती ॥ ५६ ॥

भावार्थ—भरत चक्रवर्तीने अपने पुत्रका जन्मोत्सव किया। फिर चक्र रत्नका सन्मान करके भारतके छः खण्डके जीतनेकी इच्छा की। चार प्रकार महासेना एकत्र की, अनेक राजा साथ हुए, चक्ररत्नको आगे करके चले। हजारों म्लेच्छ राजाओंने अपूर्व सेनाको देखकर क्षोभित हो, आलस्य त्यागकर युद्ध किया। तब भरतका सेनापति जयकुमार जो किसीसे जीता नहीं जासकता था क्रोध करके उन म्लेच्छ राजाओंसे लड़ने लगा। उनको शीघ्र वश कर लिया। इस तरह भरतचक्रीने साठ हजार वर्षमें भारतके छः खण्ड विजय किये फिर वह अयोध्या नगरीको लौटे।

नेमिनाथ युद्धस्थलमें—

श्री नेमिनाथ तीर्थंकर महाभारत युद्धमें गए थे-पर्व ५०।

यदुष्वतिरथो नेमिस्तथैव बलकेशवौ।
अतिक्रम्य स्थितान् सर्वान् भारतेऽतिरथांस्तु ते ॥७७॥

भावार्थ-यदु वंशियोंमें भारत युद्धमें अतिरथ; नेमिनाथ, बलदेव, नारायण सब उपस्थित हो गए।

(१२) उत्तर पुराण नौमी शताब्दीके श्री गुणभद्राचार्य कृत।

श्री हरिषेण चक्रवर्तीने श्रावक व्रत धारण किये फिर चक्रवर्ती हुए। इसी तरह तीर्थंकर व चक्री चक्रवर्ती अणुव्रती। व्रत लेते हैं। इसीसे सिद्ध है कि श्रावक व्रत-धारी चक्रवर्ती सेना लेकर दिग्विजयके लिये जा सक्ते हैं।

हरिषेणोऽप्युपादाय श्रावकव्रतमुत्तमं।
मुक्तेर्द्वितीयसोपानमिति भर्त्ताविशत् पुरं ॥ ६९ ॥
पुरं प्रविश्य चक्रस्य कृतपूजाविधिर्दिशः।
जेतुं समुद्यतस्तस्य तदानीमवत् पुरे ॥ ७४ ॥ पर्व ६७

भावार्थ—हरिषेणने उत्तम श्रावक व्रत धरे फिर नगरमें आया। चक्ररत्नका सन्मान किया और दिग्विजय करनेकी तय्यारी की।

श्री रामचन्द्रने युद्ध किया।

श्री रामचन्द्र मोक्षगामी आठवें बलभद्र थे। रावणकी सेनासे युद्ध करनेकी आज्ञा देते हैं—

लंकापुरवहिर्भागे तान्निवेश्यतः स्थितौ ।
नभश्चरकुमारेषु तदारामाज्ञया पूरे ॥ ५२३ ॥
संप्राप्य युद्धमानेषु रावणस्याग्रसूनुना ।
संभूयेंद्रजिता यूयं युध्यध्वमिति सक्रुधा ॥५२४॥पर्व ६८

भावार्थ—लंकाके बाहर रामलक्ष्मणने संघको ठहराया फिर रामचंद्रजीने आज्ञा दी कि विद्याधरकुमार नगरमें जाकर रावणके पुत्र इंद्रजीतसे युद्ध करे ।

मोक्षगामी जीवंधर युद्धकर्ता—

श्री महावीर तीर्थंकरके समयमें प्रसिद्ध मोक्षगामी जीवंधर-कुमारने युद्धमें काष्ठांगारका वध किया ।

ततः संनद्धसैन्यः संस्तस्य गत्वोपरि स्वयं ।
युध्वा नानाप्रकारेण चिरं निर्जित्य तद्बलं ॥ ६६५ ॥
गिरींत विजयं गंधगजं समदमूर्जितं ।
समारूढाः प्ररूढाज्ञं काष्टांगारिकमुद्धतं ॥ ६६६ ॥
उपर्यशनिवेगाख्यविख्यातकरिणं स्थितं ।
हत्वा चकार चक्रेण तनुशेषं रुषा द्विषं ॥ ६६७ ॥
यथा न्यायं प्रजाः सर्वाः पालयन् हेलयेप्सितान् ।
लीलयानुभवन् भोगान् स्वपुण्यकलितान् स्थितः ॥६७१
(पर्व ७५)

भावार्थ—जीवंधरकुमार सेना लेकर उसके ऊपर गए । नाना प्रकार बहुत देर तक युद्ध करके उसकी सेनाको जीता । तब काष्ठांगार मंध गजपर चढकर उद्धत होकर आया । जीवंधर अशनिवेग हाथीपर चढा और चक्रसे शत्रुको मार गिराया । कुमारने न्यायसे

प्रजाका पालन किया व पुण्यसे प्राप्त भोगोंका भोग भी किया।

रिषभ व शांतिनाथ आरम्भ प्रतिय—

(१२) द्वितीय शताब्दीके प्रसिद्ध आचार्य समंतभद्र स्वयंभूस्तोत्रमें तीर्थंकरोंकी स्तुतिमें कहते हैं—

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः॥ १॥
चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जय मोहचक्रम्॥ ७७॥

भावार्थ—प्रजाके स्वामी प्रथम श्री ऋषभदेव तीर्थंकरने गृहस्थावस्थामें आजीविका चाहनेवाली प्रजाको खेती आदि कर्मोंकी शिक्षा दी फिर तत्वज्ञानी विद्वान ऐश्वर्यशाली महात्माकी ममता हट गई और वे वैराग्यवान होगए।

श्री शांतिनाथ चक्रवर्ती तीर्थंकरने गृहस्थावस्थामें भयंकर चक्रसे सर्व राजाओंको जीता फिर साधु होकर समाधिके चक्रसे दुर्जय मोहकी सेनाको जीता।

नोट—इन उदाहरणोंसे सिद्ध है कि एक जैन गृहस्थ राज्य कर सक्ता है, न्यायसे दंड देसक्ता है व न्यायसे युद्ध कर सक्ता है। वह विरोधी हिंसाका त्यागी नहीं है। जैनधर्मको पालनेवाले सर्व गृहस्थी भलेप्रकार राज्यशासन, व्यवहार, परदेशयात्रा, कारीगगरीके काम व खेती आदि कर सक्ते हैं व श्रावकके व्रतोंको भी पाल सक्ते हैं।

अध्याय पांचमा।

सत्याग्रह अहिंसामय युद्ध है।

कभी कभी गृहस्थोंको भी मुनियोंकी तरह किसी अन्यायके मिटानेके लिये व अपनी सत्य प्रतिज्ञाको पालनेके लिये स्वयं कष्ट सहकर तप करना पड़ता है। यहांतक कि अपने प्राणोंकी बाजी लगानी पड़ती है। प्राणोंके त्यागको सत्य प्रतिज्ञाके पालनकी अपेक्षा तुच्छ समझा जाता है। इसको सत्याग्रहका अहिंसामय युद्ध कहते हैं। इस युद्धमें बहुधा उसके तपके प्रभावसे विजय होती है। परन्तु यह तप तब ही करना चाहिये जब अपना प्रयोजन बिलकुल सत्य, ठीक व न्याययुक्त हो तथा जो कोई इस सत्य व न्यायमें बाधक हो वह हमारे तपसे प्रभावित हो सके। इस बातका निर्णय अपनी तीव्र बुद्धिसे गृहस्थको करना चाहिये। दुष्ट व बदमाश व गाढ़ अन्यायीके सामने यह अहिंसामय हमारा तप कार्यकारी नहीं होगा। जैन सिद्धांतमें पुराणोंके भीतर ऐसे कई उदाहरण हैं। उनमेंसे दो तीन यहां दिये जाते हैं—

यमपाल कथा।

(१) यमपाल चांडाल—यमपाल चांडाल एक राजाके यहां फांसी देनेके कामपर नियत था। एक दफे वह एक साधु महात्माके उपदेशको, सुनने चला गया। वहां अहिंसा धर्मका उपदेश था—हिंसा करना पाप बन्धका कारक है। अहिंसा परम प्रिय वस्तु है। प्राणी मात्रकी रक्षा करना धर्म है। यह भी उपदेशमें

निकला कि यदि रोज आरंभी हिंसा न छूटे तो महीनेमें दो अष्टमी व दो चौदपके दिनोंमें गृहस्थीको उपवास करके धर्मध्यान करना चाहिये व उस दिन आरंभी हिंसा भी न करनी चाहिये । इस कथनको सुनकर उपस्थित लोगोंने इन चार पर्वोमें आरंभी हिंसाका त्याग किया । यमपाल चांडालने भी महीनेमें दो दिन चौदस, चौदसको आरम्भी हिंसाका त्याग किया और उस दिन फांसी न देनेकी प्रतिज्ञा करली । वह चौदसके दिन राज्यकार्यमें नहीं जाता था व घर ही पर रहकर धर्मका चिंतवन करता था । वहांके राजाने एकदफे अष्टाह्निका व्रतके आठ दिवसमें यह नगरमें ढिंढोरा पिटा दिया था कि कोई मानव पशुका घात न करे न करावे, जो करेगा उसे भारी दंड मिलेगा । उस राजाके एक पुत्रने ही मांसकी लोलुपतावश प्राणघात कराया । राजाको मालूम पड़ गया, उसने उस पुत्रसे रुष्ट होकर उसको फांसी पर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी । वह दिन चौदसका था । कोतवालने यमपाल चांडालको घरसे बुलवाया कि वह राजपुत्रको फांसी पर लटकावे । सिपाही लोग यमपालके घर पर आये । आवाज लगाई, किवाड़ बंद थे । यमपाल समझ गया कि किसी हिंसाके कामको करानेके लिये राजाने बुलवाया होगा । उसने अपनी स्त्रीसे कह दिया कि कहदे कि वह घर पर नहीं है । तब सिपाही बोला कि वह बहुत कमनसीब है । आज राजाके पुत्रको फांसी पर लटकाना है । यदि वह होता व चलता व फांसी देता तो उसको राजपुत्रके हजारोंके गहने कपड़े मिल जाते ।

स्त्रीको इन वचनोंके सुननेसे लोभ आ गया । उसने

किवाड़ खोल दिये और मुंहसे कहती हुई कि पतिदेव नहीं हैं, उंगलीके इशारेसे बताने लगी कि वे वहांपर बैठे हैं। सिपाहीने यमपालको पकड़ लिया। कोतवालके पास ले आए। कोतवालने आज्ञा की कि राजकुमारको फांसीपर लटकाओ। तब यमपालने प्रार्थना की कि आज चतुर्दशी है। आज मैंने हिंसा करनेका त्याग किया है। मैं इस कामको आज नहीं कर सक्ता हूं। क्षमा करें। कोतवालने राजाको खबर की। राजाने शांतिसे विचार किये विना क्रोध कर लिया और यमपालको बुलाकर कहा कि आज्ञाको पालन करो। उसने बड़ी विनयसे प्रार्थना की कि आज मुझपर कृपा करें। मैंने मुनिराजके पास आजके दिन हिंसा करनेका त्याग किया है। मैं लाचार हूं, मैं अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ नहीं सक्ता। राजाने धमकी दी कि यदि तुम आज्ञा न मानोगे तो तुमको भी प्राणदण्ड मिलेगा। तब यमपाल चांडालने विचार किया कि मुझे अपने सत्यको निवाहना चाहिये। प्राण भले ही चले जावें परन्तु सत्य आग्रह या सत्य प्रतिज्ञाको कभी तोड़ना न चाहिये। धर्मके नाशसे मेरे आत्माका बुरा होगा। प्राण तो एक-दिन छूटने ही हैं, आत्माका नाश तो नहीं होता।

उसने प्राण त्यागका निश्चय करके कह दिया—महाराज! मैं धर्मको छोड़ नहीं सक्ता हूं। यदि प्राण भी जावें तो परवाह नहीं है। इस समय यमपालके मनमें अहिंसामय तपकी भावना होगई कि धर्म त्याग न करूंगा, चाहे प्राण चले जावें व राजाकी आज्ञा मेरे धर्मको भ्रष्ट करनेवाली मेरे लिये न्यायपूर्ण नहीं है। राजा एक

दिन ठहर सक्ता है व दूसरेको आज्ञा दे सक्ता है। राजा विचार नहीं करता है तो मुझे तो सत्य व्रत न छोडना चाहिये। यही सत्याग्रहका तप है जो न्याय व धर्मके पीछे प्राणोंकी बाजी लगा देना।

राजा आज्ञा देता है कि इस यमपालको व राजपुत्रको दोनोंको गहरे तालावमें डुबा दिया जावे। सेवकगण दोनोंको ले जाते हैं। यमपाल आत्माके अमरत्वका व अहिंसा व्रतके पालनेमें दृढ़ता रखनेका विचार करता हुआ हर्षित मनसे चला जाता है व मनमें कहता है कि आज मेरे प्रणकी परीक्षा है। मुझे परीक्षामें सफल होना चाहिये। उसके मनकी दृढ़ भावनाका व तपका यह फल होता है कि जब उसको तालावमें डालते हैं तब एक देव आता है, देवको अवधिज्ञान होता है, वह यमपालको सत्य प्रतिज्ञावान व धर्ममें दृढ़ जानकर उसे तालावसे निकालकर एक ऊँचे सिंहासनपर विराजमान कर देता है व उसके साथी और देव भी आते हैं। सब देव मिलकर उसके धर्ममें स्थिर रहनेकी स्तुति करते हैं।

यह खबर राजाको पहुंचती है। राजा भी आता है व उसकी महिमा देखकर अपने मूर्खतापूर्ण व क्रोधपूर्ण व्यवहारपर पश्चाताप करता है व इस यमपालको धर्मात्मा समझकर उसका स्वर्णकलशोंसे स्नान कराता है, नए वस्त्राभूषण पहनाता है, कुछ ग्राम देता है। वह तबसे एक धर्मंग नित्य अहिंसा धर्म पालनेवाला गृहस्थ श्रावक हो जाता है, चांडालकर्मका त्याग कर देता है। इस तरह यमपाल चांडालने सत्याग्रहके अहिंसामय तपसे विजय पाई।

(२) **श्री सुदर्शन सेठकी कथा**—चंपापुरमें सेठ वृषभदास

राज्यमान्य थे। उनका पुत्र सुदर्शन कामदेवके समान रूपवान, विद्वान, धर्मात्मा था, जो जैन धर्मके श्रावक पदके बारह व्रत पालता था। अष्टमी चौदसको उपवास करके स्मशानके निकट ध्यान करनेको जाता था। एक दिन सेठ सुदर्शनकुमार युवावयमें राजाके साथ वनकी सैर करनेको गया था। राजाकी रानी सुदर्शनको देखकर मोहित हो गई व एक प्रवीण सखीसे कहा कि रात्रिको उसे महलके भीतर लाओ। सखीने एक कुम्हारसे सेठ सुदर्शनके आकारका मट्टीका पुतला बनवाया और रानीके महलमें लेकर चली तब दरवानने रोका। उस सखीने मट्टीके पुतलेको पटक दिया और क्रोधमें बोली—रानीने यह खिलौना मंगाया था सो तुम्हारे डरसे फूट गया। रानी बहुत क्रोधित होगी। तब सब सिपाहियोंने विनती की कि दूसरा पुतला लेआ अब तुझे नहीं रोकेंगे। इसतरह द्वारवालोंको वश करके वह लौटी। अष्टमीका ही दिन था। सेठ सुदर्शन उपवास करके रात्रिको वनमें आसन लगाए ध्यान कर रहे थे। उसने सेठको कंधे पर चढ़ा लिया और रानीके महलमें लाकर धर दिया। रानी कामभावसे पीड़ित थी। अनेक हावभाव विलास किये परन्तु सेठ सुदर्शनका मनमेरु नहीं डगमगाया। सेठजी उसे उपसर्ग समझकर पत्थरके समान ध्यानी व मौनी रहे। मनमें प्रतिज्ञा करली कि जो इस उपसर्गसे बचे तो मुनिदीक्षा धारण करेंगे। रानीने रातभर चेष्टा की। जब देखा कि यह तो टससे मस न हुए, इतनेमें सबेरा होगया।

अपना दोष छिपानेको इसने अपना अंग मर्दन किया व

नखोंसे विदार किया और गुल मचा दिया कि एक सेठ कुमार मेरी लज्जा लेनेको आया है, मेरे घर बैठा है। राजाको खबर हुई, राजा क्रोधसे भर गया, विना विचारे यह आज्ञा कर दी कि उस सेठका सिर फौरन अलग करदो। चाकर लोग तुर्त सेठको वधको लेगए। सेठ मौनमें, ध्यानमें, सत्य प्रतिज्ञामें आरूढ़ थे। उस समय यदि अपना बचाव करते तो कोई ठीक नहीं मानते इससे शांतिसे प्राण देना ही ठीक समझा। सत्याग्रहसे अहिंसामई तप किया। वहांके रक्षक देवने अवधिज्ञानसे यह सब चरित्र जान लिया व सेठको निर्दोष व धर्मात्मा जानकर उसकी रक्षा करना धर्म समझा। जैसे ही सेठके ऊपर तलवार चलाई गई वह गलेके पास आते ही फूलकी माला होगई। देवोंने प्रगट होकर बहुत स्तुति की। राजा भी आया। देवोंने रानीका दोष प्रगट किया व सेठको निर्दोष व धर्मात्मा सिद्ध किया। राजाने रानीको उचित दंड दिया। सेठ सुदर्शन सत्याग्रहके अहिंसामय तपमें विजय पाकर परम संतोषित हुए और तब सबको धर्मका महात्म्य बताकर व समझाकर संतोषित किया। अपने पुत्र सुकांतको बुलाकर कर्त्तव्यपालनकी शिक्षा दी। फिर आप वनमें श्री विमलवाहन मुनिके पास गए। सर्व परिग्रह त्यागकर मुनि होगए। पूर्ण अहिंसाधर्म पालने लगे। प्रभू ध्यानकी अग्निसे कर्मोंका नाशकर अरहंत होकर सिद्ध व मुक्त होगए। सेठ सुदर्शनका निर्वाण स्थान पटना गुलज़ारबाग ष्टेशनके पास ही निर्मापित है। इस निर्वाण भूमिकी सर्व दिगम्बर व श्वेतांबर जैन पूजन करते हैं।

(३) सीताजीकी कथा-श्री रामचन्द्रजीकी स्त्री सीताको जब रावण विद्याधर दण्डकवनमेंसे छल करके हर ले गया तब एकाकी सीताने अपने धर्मकी व शीलव्रतकी रक्षा सत्याग्रहके अहिंसामय तपसे की। उसने रावणके यहां जाकर अन्नपान त्याग दिया व नियम ले लिया कि जबतक श्री रामचंद्रजीको खबर न सुनाऊँगी कि उन्हें मेरा पता है तबतक मैं उपवास करके आत्म-चिंतन करूंगी व रावण जो उपसर्ग देगा सहन करूंगी। रावणने अनेक लालच दी परन्तु सीताजीका मन कुछ भी विकारयुत नहीं हुआ। कुछ दिनोंके बाद हनूमानजी पहुंचे व सीतासे मिले। रामचन्द्रकी कुशल छेम विदित होगई तब उसने आहारपान किया। निरन्तर शीलधर्मकी रक्षा करती हुई रहती थी। उसके सत्य प्रतिज्ञाके प्रतापसे रावणका वध किया गया। लंकाको विजय किया गया। सीता सानन्द शील धर्मकी रक्षा करती हुई अयोध्यामें आ गई। सत्य व शीलकी विजय अहिंसामय सत्य प्रतिज्ञासे हो गई।

(४) नीली सतीकी कथा-प्राचीन लाड़ देश वर्तमान गुजरात देशमें भृगुकच्छ नगर-वर्तमान भड़ोंच नगरमें एक जिनदत्त सेठ बड़े धर्मात्मा जैनी थे। उनके एक पुत्री नीली थी। वह विदुषी, धर्मात्मा व श्रावक धर्मके पालनमें निपुण थी। यह रोज श्री जिनमंदिरजीमें पूजन करने जाती थी। एक दूसरे सेठके कुमार सागरदत्तने देखा तो मोहित हो गया व विवाहकी कामना करने लगा। यह सागरदत्त बौद्ध धर्मी था। जिनदत्तको यह नियम था कि मैं अपनी पुत्री जैनको ही विवाहूंगा।

सागरदत्तने व उसके कुटुम्बने नीलीके विवाहके लिये कपटसे जिनधर्म धारण कर लिया। वे श्रावकके नियम कपटसे पालने लगे। कुछ दिन पीछे जिनदत्तसे सागरदत्तके पिताने कन्या नीलीके विवाहनेकी इच्छा प्रगट की। जिनदत्तने सागरदत्तको जैनी जानकर नीलीका विवाह कर दिया। विवाहके पीछे सागरदत्त व कुटुम्ब जैनधर्म छोड़कर बौद्ध धर्म साधन करने लगे। तब जिनदत्त व नीलीको बहुत ही क्लेश हुआ। परन्तु संतोष धारकर नीली घरमें सर्व कर्त्तव्य करती थी। धर्ममें जिनधर्मका साधन करती थी, पूजन जिनमंदिरमें करती थी। मुनिदान देकर भोजन करती थी। सागरदत्तके कुटुम्बने बहुत चेष्टा की कि नीली बौद्धधर्मी हो जावे। जब नीलीने किसी भी तरह जैन धर्मको नहीं छोड़ा तो एक दिन उसकी सासने कलंक लगा दिया कि यह कुशील सेवन करती है।

जब नीलीने अपना दोष सुना तब वह बहुत दुःखित हुई और यह सत्य प्रतिज्ञा की या सत्याग्रह किया कि जबतक यह झूठा दोष न दूर होगा और मैं कुशीली नहीं हूं शीलवती हूं ऐसी सिद्धि न होगी तबतक मैं अन्नपान नहीं ग्रहण करूंगी। ऐसी प्रतिज्ञा लेकर वह जिनमंदिरजीमें जाकर बड़े शांतभावसे श्री जिनप्रतिमाके सामने होकर आत्मध्यान करने लगी। उस शीलवती नारीके शील महात्म्यसे नगर रक्षक देव रातको नीलीके पास आया और कहने लगा— हे सती! नगरके द्वार सब बंद कर देता हूं व राजाको स्वप्न देता हूं कि वे द्वार उसी स्त्रीके पगके अंगूठे लगनेसे खुलेंगे जो मन, वचन, कायसे पूर्ण शीलवती होगी। तेरे ही बाएं पगके लगनेसे द्वार

खुलेंगे, तेरे शीलकी महिमा प्रगट होगी। देवने ऐसा ही किया।

राजाने स्वप्नको याद करके आज्ञा दी कि नगरकी स्त्रियां पगसे द्वारोंको खोलें। अनेक स्त्रियोंने उद्यम किये। कपाट नहीं खुले। इतनेमें नीलीको बुलाया गया। इसने बड़ी शांतिसे णमोकार मन्त्र पढ़कर जैसे ही अपना बाएं पग लगाया द्वार खुल पडे। राजा प्रजाने शीलकी महिमा देखकर नीलीकी बहुत स्तुति की। नीलीके बौद्ध धर्मी कुटुम्बने और नगरके लोगोंने जैन धर्म धारण कर लिया। सत्याग्रहसे नीलीकी विजय हुई। जहां कोई बलवान व अधिकारी निर्बलके साथ अन्याय व जुल्म करता हो वहां यह सत्याग्रहका अहिंसामय तप बलवानका मद चूर्ण करनेको वज्रके समान है।

महात्मा गांधी।

महात्मा गांधीने आफ्रिकामें व भारतमें इस सत्याग्रहके तपसे राज्यशासन द्वारा होता हुआ अनुचित वर्ताव रोका है व गरीबोंका कष्ट मिटवाया है। गुजरातमें बारडोलीके किसानोंकी विजय इसीसे हुई। कांग्रेसको गांधीजीने यही मंत्र सिखलाया जिससे लाखों भारतीयोंने हर्षपूर्वक जेलयात्राएं कीं व लाठियोंकी मार सही। स्त्रियोंने भी सत्याग्रह सेना बनाई व कष्ट सहे। स्वयं बदला लेनेकी शक्ति होनेपर भी कष्ट देनेवाले सिपाहियोंपर शांत व क्षमा भाव रखा जिससे कांग्रेसने बृटिश राज्यनीतिज्ञोंपर व सारी दुनियांपर अपना प्रभाव जमाया। प्रांतिक स्वराज्य भारतके सात प्रांतोंमें आजकल कांग्रेसके हाथमें है।

वास्तवमें यह एक प्रकारका तप है। इससे विरोधीकी आत्मा पिघल जाती है। जिनके भीतर कुछ भी विद्या व मनुष्यता है उन पर प्रभाव अवश्य पडता है। इस सत्याग्रहके युद्धसे कुछ लोगोंकी हानि होती है, बहुतकी रक्षा होती है। एक तरफ कष्ट होता है, दोनों तरफ नहीं होता है। शस्त्र युद्धमें दोनों तरफ हथियार चलते हैं। यदि विजय भी होजावे तो भी हारनेवाला द्वेष नहीं छोडता है। फिर अवसर पाकर द्वेषभावसे युद्ध ठान लेता है। परस्पर शत्रुताकी धारा चलती रहती है परन्तु उस अहिंसामय सत्याग्रहके युद्धमें जब अन्यायीका आत्मबल झुक जाता है तब वह अन्याय निवारण कर देता है और स्वयं पछताता है कि मैंने वृथा ही अन्याय करके लोगोंको कष्ट दिया। फिर वह सामनेवालोंका मित्र होजाता है। परस्पर क्षमा व शांतिका स्थापन होजाता है। परस्पर द्वेष नहीं चलता है। इसलिये कहींपर किसीपर अन्याय होता हो व कष्ट पानेवालोंका पक्ष सच्चा हो तो वहां बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये। यदि समझानेसे काम सिद्ध न हो और अपना बल भी कम हो और अहिंसामय तप रूपी सत्याग्रहके युद्धसे काम सिद्ध होता समझमें आता हो तो शस्त्र प्रयोगसे विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसमें एक तरफकी थोड़ी हानि है व सफलता होनेपर विशेष लाभ है।

अध्याय छठा।

धर्मोंमें पशुबलि निषेध।

गृहस्थीको संकल्पी इरादापूर्वक (intentional) हिंसाका त्याग करना तो जरूरी है। जिस हिंसामे गृहस्थीका कोई जरूरी न्याय व धर्मपूर्वक जीवनका मतलब सिद्ध न हो, व जो बे मतलब हो, व मिथ्या मान्यता श्रद्धा या रुचिसे हो या केवल मौज व शौकसे हो। यह सब संकल्पी हिंसा है। इसके अनेक प्रकार हो सक्ते हैं। हम यहांपर नीचे लिखे प्रकारोंका वर्णन करेंगे। **(१) धर्मार्थ पशुबलि, (२) शिकारके लिये पशुवध, (३) मांसाहारके लिये पशुवध, (४) मौज शौकके लिये हिंसा।**

धर्मार्थ पशुबलिका रिवाज इस असत्य मान्यतापर चल पडा है कि धर्मके लिये किसी देवी देवताको या किसी परमात्माको प्रसन्न करना जरूरी है। इससे हमारा भला होगा, हमारी खेती फलेगी, हमें धन मिलेगा, पुत्रका लाभ होगा, शत्रुका क्षय होगा, रोग दूर होगा। इत्यादि लौकिक प्रयोजनकी सिद्धि विचार करके धर्मके नामसे किसी ईश्वरको या किसी देवी देवताको प्रसन्न करनेका मनोरथ रखके या स्वर्ग प्राप्तिका हेतु रखकर दीन, अनाथ, मूक पशुओंकी बलि करना, उनका वध करना, यज्ञोंमें होमना या काटना, उनका रक्त बहाना, मांसको चढ़ाना आदि धर्मार्थ पशुबलि निरर्थक हिंसा है, बड़ी भारी निर्दयता है।

यह पशुबलि अज्ञान व मिथ्या श्रद्धानपर होती है। यह

विश्वास गलत है कि कोई देवी, देवता या ईश्वर पशुबलिसे राजी होकर हमारा काम कर देगा ।

देवीको जगन्माता, जगद्धात्री, जगत रक्षिका कहते हैं । देव भी जगरक्षक, जगत्राता प्रसिद्ध है । ईश्वर दयासागर, रहीम कहलाता है । जगतमें पशुपक्षी भी गर्भित हैं । पशुपक्षियोंकी भी माता देवी है, उनका पिता व रक्षक देव है । पशुपक्षियोंका भी दयासागर ईश्वर है । खुदा इनपर भी रहीम है । तब यह कैसे माना जा सक्ता है कि कोई देवी, देवता या ईश्वर अपने रक्षाके पात्र पशुपक्षियोंके वधसे प्रसन्न हो ? कोई पिता अपने बच्चोंके वधसे राजी नहीं हो सक्ता है । क्या देवी देवता या ईश्वर मानवोंका ही रक्षक या पिता माता है ? क्या उसकी दया मानवोंपर ही रहती है, यह मानना मानवोंका पक्षपात है । जब वह जगतकी माता है, जगतका पिता है, विश्वपर दयालु है, तब वह पशु समाजकी भी माता है, उनका पिता है, उनका दयाकारक है । प्राणपीडा करना, कष्ट देना पाप है, अपराध है । बलि होनेवाले प्राणी जब मारे जाते हैं वे तड़फड़ाते हैं, चिल्लाते हैं, घोर वेदना सहते हैं । यहां हिंसा करनेका ही मिथ्या संकल्प है । परको पीड़ा देकर पुण्य चाहना, भला चाहना, उसी तरह मिथ्या विचार है जैसे विष खाकर जीना चाहना, अग्निमें जलकर ठण्डक चाहना, सूर्यका उदय पश्चिममें चाहना । कोई २ ऐसा कहते हैं कि जिन पशुओंको यज्ञमें होमा जाता है व जिनकी बलि की जाती है वे स्वर्गमें जाते हैं, तब यह विचार होगा कि इसी तरह यज्ञमें अपने कुटुम्बकी

या आपकी बलि क्यों न कर दी जावे। जब पशुबलिसे पशु स्वर्ग जाता है, तो पशुबलि करनेवाला यदि अपनेको, अपने पिताको, भाईको, पुत्रको बलिपर चढ़ादे तो वे भी स्वर्ग चले जायंगे। सो ऐसा कोई नहीं करता है इसलिये पशु स्वर्ग जाते हैं यह मान्यता भी खोटी है। यदि पशुबलिसे या पशु वधसे या पशु पीड़ासे पुण्य हो तो पाप फिर किससे हो ?

वास्तवमें आपको या परको वध करना, पीड़ा देना या दुःख पहुंचाना ही पापका कारण है। पुण्य तो प्राणोंकी रक्षासे, कष्ट निवारणसे होगा। कष्ट देनेसे तो पाप ही होगा। पशुबलिसे पुण्य होना मानना भी मिथ्या है। जगतमें संसारी सुख पुण्यके फलसे व दुःख पापके फलसे होते हैं। पुण्य मंद कषायसे, या शुभ रागसे, परके कष्ट निवारण, परमात्माके गुणोंका चिन्तवन, परोपकार आदिसे होता है। तब पुण्यके चाहनेवालेको पशुबलि न करके पशु रक्षा करनी चाहिये। पशुओंके प्राण बचाने चाहिये। वे भूखे प्यासे हों तो भोजन दान देना चाहिये। जसे अपने शरीरमें कोई शस्त्र तो क्या सुई भी चुभावे तो महान कष्ट होता है। कांटा लगने पर चित्त घबड़ाता है, वैसे ही किसी पशुपक्षीपर शस्त्रघात होगा तो उसे भी कष्ट, पीडा, व आकुलता होगी। वह महान संकटमें पड़ जायगा। यदि कोई पशु यज्ञमें या देवी देवताके सामने खुशीसे प्राण दे देता हो तो शायद उसका कष्ट न माना जावे। परन्तु ऐसा नहीं है। कोई पशु मरना नहीं चाहता है। उनको बांध करके जबरदस्ती वध किया जाता है। जो धर्मके नामसे या

देवी देवता या ईश्वरके नामसे ऐसा पशुवध करते हैं वे धर्मको, देवी देवताको व ईश्वरको बदनाम करते हैं, उसकी अपकीर्ति करते हैं। धर्म अहिंसा है। देवी देवता जगतके रक्षक दयालु हैं। ईश्वर दयासागर है। ऐसा होते हुए भी हिंसाको धर्म मानना, देवी देवता व ईश्वरको हिंसासे राजी होना मानना वृथा ही उनको दोष लगाना है।

धर्म अहिंसा तथा दयाको कह सक्ते हैं। जहां क्रूरतासे प्राणीकी बलि हो वह धर्म नहीं हो सक्ता है। इसलिये धर्मार्थ पशुबलि और अज्ञान है। किसी भी बुद्धिवान प्राणीको भूलकर भी इस अपराधको न करना चाहिये। कोई भी धर्मका नेता ऐसी आज्ञा नहीं दे सक्ता है। जहां कहीं भी ऐसा कथन हो वह हिंसाके प्रेमियोंके द्वारा व मांसाहारियोंके द्वारा ही लिखा हुआ माना जायगा। जैन शास्त्रोंमें इसका अत्यन्त निषेध है। यह संकल्पी वृथा हिंसा है। हिंदू शास्त्रोंमें भी निषेधके बहुत वाक्य हैं। कुछ यहां दिये जाते हैं—

(१) यजुर्वेद १८-३

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखूं।

(२) महाभारत अनुशासन पर्व १३ अध्याय।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदयः।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः ॥ १४ ॥

भावार्थ—अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही बड़ा इन्द्रिय-दमन है, अहिंसा ही बड़ा दान है तथा अहिंसा ही बड़ा तप है।

महाभारत शांतिपर्व-

कण्टकेनापि विद्धस्य महती वेदना भवेत्।
चक्रकुंतासियष्ट्याद्यैर्मार्यमाणस्य किं पुनः ॥ ५ ॥

भावार्थ–कांटा चुभनेसे ही जब महान् दुःख होता है तब चक्र, भाला, तलवार, लकड़ी आदिसे मारे जानेवालेको कितना कष्ट होगा ?

महाभारत शांतिपर्व उत्तरार्द्ध मोक्षधर्म अ० ९२–

सुराः मत्स्याः पशोर्मांसं द्वीजी दानां बलिस्तथा।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येयं तन्न वेदेषु कथ्यते ॥ ४० ॥

भावार्थ–मदिरा, मछली, पशुका मांस, तथा बलिदान धूर्तोंने चलाया है। वेदोंमें इनका निषेध कहा गया है।

(३) भागवत स्कंध ३ अ० ७–

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥

भावार्थ–हे अकलंक ! सर्व वेद, यज्ञ, तप, दान उस मनुष्यके पुण्यके लिये अंशमात्र भी नहीं हैं जो जीवोंको अभयदान देकर रक्षा करते हैं।

(४) हिंदू पद्मपुराण–शिवं प्रति दुर्गा–

मदर्थे शिव कुर्वंति तामसा जीवघातनं।
आकल्पकोटिनिरये तेषां वासो न संशयः ॥
यज्ञे यज्ञपशुं हत्वा कुर्याद् शोणितकर्दमं।
स पचेन्नरके घोरे यावद्रोमाणि तस्य वै ॥

देवतान्तरमुद्दिश्य त्यागेन स्वेच्छयाऽथवा।
हत्वा जीवांश्च यो भक्षेत् नित्यं नरकमाप्नुयात् ॥
मम नाम्ना तु या यज्ञे पशुहत्यां करोति यः।
क्वापितन्निष्कृतिर्नास्ति कुंभीपाकमवाप्नुयात् ॥

भावार्थ–हे शिव! (दुर्गादेवी कहती है) मेरे लिये जो कठोर भाववाले तामसी मानव जीवोंका घात करते हैं वे करोड़ों कल्पोंतक नरकमें रहेंगे संशय नहीं। जो कोई यज्ञमें यज्ञके पशुको मारकर रुधिरकी सींच करता है वह घोर नरकमें तबतक रहेगा जितने रोम उस पशुमें हैं। जो कोई मेरे नामसे या अन्य देवताके नामसे या अपनी इच्छासे जीवोंको मारकर खाता है वह नित्य नरकको पावेगा। मेरे नामसे या यज्ञमें जो पशुकी हत्या करता है वह नरकमें पड़ेगा, उसका निकलना कठिन है।

(५) विश्वसार तंत्रमें–

सा माया प्रकृती देवी यद्धि माता च कथ्यते।
यद्धि माता इमे सर्वे येमे स्थावरजंगमाः॥
मम नाम्नि पशुं हत्वा वधभागी भवेन्नरः।
एतत्तत्वं न जानाति माता किं भक्षयेत्सुतान् ॥
घर्ताकर्ता ततो स्रष्टा सप्तजन्मानि शूकरः।
गृद्धिनी पंच जन्मानि दशजन्मानि छागलः॥

भावार्थ–देवी माया स्वभाववाली है, वह माता है और ये सब स्थावर त्रस जंतु इसके पुत्र हैं। जो मानव मेरे नामसे पशुको मारकर हिंसाका भागी होता है वह नहीं जानता है कि क्या माता अपने पुत्रोंका भक्षण करेगी?

जो कोई पशुको पकड़नेवाला, मारनेवाला व कानेवाला है वह सात जन्म शूकर, पांच जन्म गिद्ध व दस जन्म बकरा होगा ।

(६) अगस्त्य संहितामें दुर्गां प्रति शिवः ।

अहम् हि हिंसको अतो हिंसा मे प्रियः इत्युक्त्वा आवाभ्यां पिहितं रक्तं सुराञ्च वर्णाश्रमोचितंधर्ममविचार्यार्पयन्ति ते भूतप्रेतपिशाचाश्च भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥

भावार्थ- शिवजी दुर्गासे कहते हैं कि मैं हिंसक हूं, हिंसा मुझको प्यारी है, ऐसा कहकर हम दोनोंके नामसे जो कोई मांस, खून व मदिरा वर्णाश्रमके उचित धर्मको न विचार कर अर्पण करते हैं, चढ़ाते हैं, वे मरके भूत, प्रेत, पिशाच व ब्रह्मराक्षस होते हैं ।

(७) परमहंस परिव्राजक शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं—

ता० २७ सितम्बर १९१९ को माधवबाग बम्बईमें बम्बई जीवदया मण्डलीकी सभा हुई थी, तब जगद्गुरु शंकराचार्यने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। वहांपर यह प्रस्ताव सर्वकी सम्मतिसे प्रसार हुआ था—

"जो धार्मिक पशु हिंसा किसी राज्यमें या जातिमें प्रचलित हो तो उसको कायदेसे या जातिकी सत्तासे राज्यमें व प्रजामें बंद कर दीजावे। ऐसी विशेष आज्ञा गुरुस्थानसे की जाती है।

ईसाईमतमें भी धर्मके नामसे पशुबलिकी मनाई है—

Hebrews ch. 9-12.

Neither by the blood of goats and calves, but by his own blood he entered at once into the holy place, having obtained eternal redemption

Ch. 10-4-For it is not possible that the blood of bulls and goats should take away sins.

भावार्थ-हेवरू कहते हैं कि बकरों व बछड़ोंके खूनसे नहीं किन्तु अपने ही परिश्रमसे वह पवित्र स्थानमें गया है और नित्य मुक्तिको पालिया है। क्योंकि यह संभव नहीं है कि बैलोंका या बकरोंका रुधिर पापोंको धोसकेगा।

पारसीमतमें भी पशुघातकी मनाई है—

Jartusht Namah P. 415.

He will not be acceptable to God, who shall thus kill any animal. Angel Asfundarmad says: "O holy man, such as the commands of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth and carrior."

भावार्थ-इसतरह जो कोई किसी पशुको मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगंबर एसफंद्र मदने कहा है—हे पवित्र मानव! परमात्माकी यह आज्ञा है कि पृथ्वीका मुख रुधिर, मैल, व मांससे पवित्र रक्खा जावे। (जुर्तस्तनामां द्र+९५)

(३) मुसल्मि धर्ममें भी पशुबलिकी मनाई है, देखो कुरान अंग्रेजी उल्था—

The Koran translated from the Arabic by Rev. James Rodwell M. A. London 1924.

(607) S.-22-By no means can this flesh reach into God neither their blood but piety on your part reaches there.

भावार्थ—किसी भी तरह बलि किये हुए ऊँटोंका मांस परमात्माको नहीं पहुंचता है न उनका खून। परन्तु जो कुछ धर्म तुम पालोगे वही वहां पहुंचता है।

सर्व ही धर्मोके नेताओंका मत जीवदया है, हिंसा नहीं। इसलिये धर्मके नामसे कभी पशुबलि न करनी चाहिये। यह संकल्पी हिंसा है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

धर्मो हि देवताभ्यः प्रभवति ताभ्यः प्रदेयमिह सर्वम्।
इति दुर्विवेककलितां धिषणां न प्राप्य देहिनो हिंस्याः॥८०॥

भावार्थ—धर्म देवताओंसे बढ़ता है, उनको सब कुछ चढ़ा देना चाहिये। ऐसी खोटी बुद्धिको धारकर प्राणियोंका घात न करना चाहिये।

अध्याय सातवां।

शिकारके लिये पशुवध निषेध।

शिकार या मृगयाके लिये दयाहीन मानव निरपराध पशुओं, पक्षियोंको मारकर आनन्द मानता है। इसमें हेतु केवल मनको प्रसन्न करना है। पशुगण कष्ट पावें, तड़फड़ावें, भागें यह मानव पीछा करे, उनको मारडाले तब यह अपनी वीरता मानकर राजी होता है। यह कैसी मनुष्यता है? जगतमें जैसे मानवोंको जीनेका हक है वैसा ही हक पशु, पक्षी व मच्छादिकोंको है। सर्व ही अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हैं। विना उपयोगी प्रयोजनके केवल मौज, शौकके लिये पशु-घात करना मानवोंकी दयाके क्षेत्रके बाहर एक

बड़ी निर्दयता है। प्रयोजन उचित होने पर यदि पशुओंको कष्ट मिले, उनसे अपना कुछ जरूरी काम निकले तो ऐसा क्षम्य होसक्ता है। जैसा आरंभी हिंसामें गृहस्थीको खेती, व्यापार, शिल्पादि करते हुए कष्ट देना पड़ता है परन्तु हमारा दिल बहलाव हो और पशुओंके कीमती प्राण जावें, यह कोई न्याययोग्य बात नहीं है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं—

अप्येतन्मृगयादिकं यदि तव प्रत्यक्षदुःखास्पदम्।
पापैराचरितं पुरातिभयदं सौख्याय संकल्पतः॥
संकल्पं तमनुज्झितेन्द्रियसुखरासेविते धीधनै—
र्धर्मे (र्म्ये) कर्मणि किं करोति न भवान् लोकद्वयश्रेयसि॥२८॥
भीतमूर्तीर्गतत्राणा निर्दोषा देहवित्तिका।
दन्तलग्नतृणा घ्नन्ति मृगीरन्येषु का कथा॥ २९॥

भावार्थ—हे भाई! तूने तुझे प्रगट आकुलित करनेवाले शिकार आदि कर्मोंको अपने मनके संकल्पसे या मनमाने सुखकारी मान लिया है। जिस कामको पापी हिंसक अज्ञानी करते हैं व जिसका बहुत बुरा फल भयकारी आगे होनेवाला है, तू इन्द्रियोंके सुखोंमें आधीन होकर ऐसा खोटा विचार करता रहता है। तू ऐसा विचार या संकल्प इस लोक तथा परलोकमें सुख देनेवाले व कल्याणकारी धर्मकार्योंके करनेमें क्यों नहीं करता? शिकारके शौकीन उन गरीब हिरणों तकको मार डालते हैं जो भयभीत रहते हैं, दोष रहित हैं, शरीर मात्र धनके धारी हैं, दांतोंसे तृणको ही लेते हैं, जिनका कोई शरण नहीं है तो औरकी क्या रक्षा करेंगे।

कुछ लोग कहते हैं कि शिकार खेलना क्षत्रियोंका धर्म है।

यह बात ठीक नहीं है । क्षत्रियोंका धर्म क्षति या हानिसे रक्षा करना है । देशके भीतर मानव व पशु दोनों रहते हैं । दोनोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका कर्तव्य है । वृथा मौजशौकसे पशुओंको सताना धर्म नहीं हो सक्ता है । शिकारकी क्रूरताको विचारकर अमेरिकाकी जीवदया सभाओंने शिकारके विरुद्ध बहुत आंदोलन कर रक्खा है । समाचार पत्र निकालते हैं, चित्र प्रगट करते हैं । एक दफे उन्होंने दो प्रकारके चित्र प्रगट किये थे । (१) एक तो ऐसा चित्र था कि मानव भागता जा रहा है और भेड़िये पीछे दौड़ रहे हैं । अर्थात् मानवका शिकार पशु कर रहे हैं । इससे यह बात समझाई है कि जैसा कष्ट व घबराहट मानवको शिकार किये जानेपर होती है वैसा ही कष्ट व आकुलता उस पशुको होती है जिसका शिकार किया जारहा है ।

दूसरे चित्रमें यह दिखलाया था कि एक पक्षी माता अपने चार बच्चोंके लिये दाना ढूँढ़ रही थी। चारों बच्चे उड़ नहीं सकते थे। दाना पानेकी राह देख रहे थे । इतनेमें एक शिकारी आता है । और गोलीसे पक्षी—माताको मार डालता है। बेचारों बच्चे अधमरे होजाते हैं । फिर वे सब मर जाते हैं। कितनी निर्दयता है कि पांच जीव बड़े दुःखसे प्राण गंवाते हैं। एक मानवका चित्तबहलाव हो व उसके बदलेमें पशुओंके प्राण जावें। ऐसी शिकार क्रिया किसी तरह करने योग्य नहीं है । कुछ लोग मछलियोंको पानीसे निकालकर जमीनपर डाल देते हैं, और उनकी तड़फ देखकर खुशी मानते हैं । कितनी निर्दयता है !

शिकार खेलना, हिंसक खेल है। संकल्पी हिंसाका एक भेद है। हरएक गृहस्थको इससे परहेज करना चाहिये। पक्षियोंको वृथा गोलीसे नहीं मारना चाहिये। मानवको दयावान होकर जीवन बिताना चाहिये।

अध्याय आठवां।

मांसाहारके लिये पशुवध।

मानवको स्वभावसे दयावान होना चाहिये। दयाभावसे वर्तते हुए अपना भोजनपान ऐसा रखना चाहिये जिससे शरीरकी तंदुरुस्ती बढे व रोग न होवें व अन्य प्राणियोंकी हिंसा बहुत कम हो। प्रकृतिमें पानी, हवा, अन्न फलादि पदार्थ हमारे लिये खाद्य वस हैं। हम इनको खाकर स्वास्थ्ययुक्त रह सक्ते हैं। व बहुत ही थोड़ी आरम्भी हिंसाके भागी होते हैं। हम पहले बता चुके हैं कि जल-कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवोंमें चार प्राण होते हैं। जब कि बकरे, मुरगे, गाय, भैंस आदिमें दस प्राण होते हैं। जब थोड़ी हिंसासे काम चल जावे तब बुद्धिमानको अधिक हिंसा न करनी चाहिये। जो लोग मांस खाते हैं उनके लिये कसाईखानोंमें बड़ी निर्दयतासे पशु मारे जाते हैं। यदि कोई उनको मरते हुए उनकी तड़फड़ाहटको देखले तो अवश्य ऐसे मांसका त्याग करदे। मानवोंने अपनी आदत बनाली है जिससे मांस खाते हैं। मांसकी कोई आवश्यक्ता नहीं है। हमारा शरीर उन पशुओंसे मिलता है जो मांस नहीं खाते हैं और खूब काम करते हैं।

बैल, घोडे, ऊंट, हाथी मांसाहारी पशु नहीं हैं और बोझा ढोनेका व सवारीका बहुत बड़ा काम देते हैं। भेड़िया, शेर, चीता मांसाहारी पशु हैं, इनसे कोई काम नहीं निकलता है। वे क्रूर व हिंसक जातिवाले डरावने होते हैं। स्वभावसे देखा जावे तो विदित होगा कि अन्न फलादि वृक्षोंमें पककर खुद उनका भोग नहीं करते हैं, वे दूसरोंके लिये हैं। मानवोंके लिये अन्न फल हैं, तब पशुओंके लिये घास व पत्ते व चारा व भूसा है।

प्रकृतिका यही नियम दिखता है तथा हमारे लिये गाय भैंसादिका दूध उपयोगी है। दूध देनेवाले पशुओंको पालें, उनके बच्चोंको दूध लेने दें। जब वे चारा खानेलायक होजावें, हम उनको पालनेके बदलेमें उनसे दूध लेकर उसे पीवें व उसका घी बनाकर खावें व मलाई या खोवा बनाकर मिठाइयां बनाकर खावें। मांस, मछली, अंडोंके खानेकी कोई जरूरत नहीं है। अंडे गर्भके बालकके समान है। अंडेको खाना गर्भस्थ बालकको खाना है। यदि कोई कहे कि मांसके लिये किसी पशुको न मारकर स्वयं मरेहुए पशुका मांस खानेमें क्या दोष है, इसे जैनाचार्य बताते हैं कि मांसमें हर समय पशुकी जातिके सन्मूर्च्छन जंतु वेगिनती पैदा होते रहते हैं व मरते हैं। इसीसे मांसकी दुर्गंध कभी मिटती नहीं। मांस खानेसे कठोर चित्त भी होजाता है। खाने योग्य पशुओं पर दयाभाव कैसे होसक्ता है? अतएव हिंसाका कारण मांसाहार है। कोई कहे कि हम पशुको न मारते हैं न मारनेको कहते हैं, न मारनेकी सलाह देते हैं, हमें बाजारमें मांस मिलता है हम खरीदकर लाते हैं, तो कहना होगा

कि बेचनेवाला खानेवालोंके ही लिये पशुओंको मार कर मांस तैयार करता है। यदि मांसाहारी न हों तो कसाइखानेमें पशु न मारे जावें। इसलिये मांस खाना पशुघातका कारण है। मांस खरीदनेवाले मांसकी तैयारीको अच्छा पसंद करते हैं। इससे पसंदगीकी हिंसा तो बन नहीं सक्ती। यह मांसाहार परम्परा हिंसाका कारण है। संकल्पी हिंसा है। व्यर्थ है। मानवोंको मांससे बिलकुल परहेज करना चाहिये। शुद्ध भोजन ताजा अन्नफलादिका करके तंदुरुस्त रहना चाहिये।

जर्मनीके डाक्टर लुईस कोहनी Lois Kohne डाक्टरने अपनी बनाई हुई किताब New Sceince of healing न्यू साइन्स आफ हीलिंगमें बहुत वादानुवादके बाद दिखाया है कि मांस मानवके लिये खाद्य नहीं है। मनुष्यके शरीरमें दांत ऐसे होते हैं जो मांस खानेवाले पशुओंसे नहीं मिलते हैं। किन्तु फल खानेवाले पशुओंसे मिलते हैं। बंदरके दांत व पेट मनुष्यके दांत व पेटसे मिलता है। जैसे फल खानेवाले पशु बंदर आदि फलदार वृक्षों हीकी तरफ जाकर फल खाना पसंद करते हैं, वैसे ही मनुष्योंका भी स्वभाव है। जिस बालकने कभी मांस नहीं खाया है वह कभी मांसको पसंद नहीं कर सकता है, वह सेवके फलको लेने दौड़ेगा। छोटे बच्चे माताका दूध पीते हैं। मांसाहारी स्त्रियोंमें दूध कम होता है। जर्मनीमें बच्चोंको पालनेके लिये शाकाहारी धायें बुलाई जाती हैं। समुद्रदानामें धायोंको जवके आटेकी पकी हुई कुवानी दी जाती है। वास्तवमें बात यह है कि मांस

माताको दूध बनानेमें कुछ भी मदद नहीं देता। उक्त डाक्टरने यह भी जांच की है कि जो बच्चे विना मांसके भोजनके पाले गये उनके शरीरकी ऊंचाई मांसाहारी बच्चोंसे अच्छी रही। मांसाहार इन्द्रियोंकी तृष्णाके बढ़ानेमें उत्तेजना करता है। मांसाहारी लड़के इच्छाओंको न रोककर शीघ्र दुराचारी होजाते हैं। मांसाहारसे अनेक रोग होते हैं व मांसाहारके त्यागसे अनेक रोग मिटते हैं। मियोर्ड बरहान साहब २९ वर्षकी आयुमें मरण किनारे होगए थे, परन्तु मांस त्यागनेसे व फलाहार करनेसे ३० वर्ष और जीए।

वास्तवमें मांसका भोजन मनुष्यके लिये निरर्थक नहीं किन्तु महान् हानिकारक है।

मांसाहारनिषेधमें डाक्टरोका मत।

Order of Golden age आर्डर आफ गोल्डन एज नामकी सभा (पता १५३–१५५ ब्रोम्प्टन-रोड लंडन–No. 153–155 Brompton Road London S. W.) है जो मांसाहारके विरुद्ध साहित्य प्रगट किया करती है, अपनी प्रसिद्ध की हुई पुस्तक दी टेष्टिमनी आफ साइन्स इन फेवर आफ दी नेचरल एंड ह्युमेन डाइट (The Testimomy of science in favour of natural and human diet इस पुस्तकमें मांसाहारके विरुद्ध बहुतसे विद्वानोंकी सम्मतियां हैं।

Dr. Josiah oldfield D. C. L. M. A. M. R. C. S. S. L. R. C. P. senior physician Margaret Hospital Bombay.

डाक्टर जोजिया ओल्डफील्ड ब्रोमले हस्पतालके लिखते हैं—

To-day, there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh-eaters, but to the fruit-eaters. To-day there is the chemical fact in hands of all, which none can gain say, that the products of the Vegetable Kingdom contain all that is necessary for the fullest sustenance of human life. Flesh is an un-natural food, and therefore, tends to create functional disturbance." As it is taken in modern civilization it is affected with such terrible diseases (readily communicable to man) as cancer, consumption, fever, intestinal worms etc; to an enormous extent. There is little need for wonder that flesh-eating is one of the most serious causes of the diseases that carry off ninety-nine out of every hundred people that are born."

भावार्थ—आज यह विद्वानके द्वारा निर्णय होगया है कि मानव साकाहारियोंमें होकर फलाहारियोंमें है। आज सबके हाथमें यह परीक्षा की हुई बात सिद्ध है कि वनस्पति जातिमें वह सब हैं जो मनुष्यके पूर्णसे पूर्ण जीवनको स्थिर रखनेके लिये आवश्यक है।

मांस अप्राकृतिक भोजन है और इसी लिये शरीरमें अनेक उपद्रव पैदा कर देते हैं। आजकलकी सभ्य समाज इस मांसको खानेसे केन्सर, क्षय, ज्वर, पेटके कीडे आदि भयानक रोगोंसे जो फैलनेवाले हैं, बहुत अधिक पीडित हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि मांसाहार सारे भयानक रोगोंमेंसे एक रोग है जो सौ मानवोंमेंसे ९९ बिमारोंकी जान लेता है।

Mr. Samuel Saunders (Hereld of the Golden age July 1904).

मि० सेमुअल सांडर्स (हेरल्ड आफ गोल्डन एज जुलाई १९०४) में कहते हैं—

I have abstained from fish & fowl for 62 years, and I have been observant of the rules of health, I have never had a headache, never been in bed a whole day from illness or suffered pain except from trivial accidents. I have had a very happy, and I hope somewhat useful life, and now in my 88th year I am as light and blossom and as capable of receiving a new idea as I was 20 years ago."

भावार्थ—मैं बासठ वर्षसे मछली, मांस, मुर्गी नहीं खाता हूं तथा तन्दुरुस्तीके नियमसे चल रहा हूं। मुझे कभी सिरमें दर्द नहीं हुआ। कभी मैं दिनभर बिछोनेपर नहीं पड़ा रहा, न साधारण अकस्मातोंके सिवाय दर्द सहन किया। मैंने बहुत हर्षपूर्वक जहांतक मैं समझता हूं, कुछ उपयोगी जीवन विताया है। और अब मैं ८८ वें वर्षमें इतना ही हलका प्रफुल्लित व नया विचार ग्रहण करनेको समर्थ हूं, जैसा मैं २० वर्षकी आयुमें था।

Professer G. Sims woodhead, M. D. F. R. C. P. F. R. S. Proffessor of Pathology Cambridge university, May 12th 1905.

प्रोफेसर जी० सिम्स वुडहेड केंम्ब्रिज यूनि० ता० १२ मई १९०५ को कहते हैं—

Meat is absolutely unnecessary for perfectly healthy existence and the best work can be done on a vegitarion diet.

भावार्थ–पूर्ण स्वास्थ्ययुक्त जीवन वितानेके लिये मांस बिलकुल अनावश्यक है, केवल शाकाहार पर ही बसर करनेसे सबसे अच्छा काम होसक्ता है।

इसी पुस्तकसे प्रगट है कि प्राचीन कालमें बड़े २ पुरुष होगए हैं व अब हैं जिन्होंने बिलकुल मांस न खाया, उनके कुछ नाम हैं। (१) यूनानके पैथौगोरस, (२) प्लेटो, (३) अरिष्टाटल; साक्रटीज, पारसियोंके गुरु जोराष्टर, क्रिश्चियन पादरी जेम्स, मैथ्यू पेटेर, अनेक विद्वान जैसे–मिल्टन, इजाक, न्यूटन, बेनजामिल, फ्रैंकलिन, शेल्ली, एडिसन।

मांसाहारियोंसे शाकाहारी शरीरकी वीरता दिखानेमें व देरतक विना थके काम करनेमें अधिक चतुर पाए गए हैं।

मांसाहारसे मदिरा पीनेकी चाह बढ जाती है। जिन देशोंमें मांसका कम प्रचार है वहां मदिरा भी कम है। बहुतसे लोग समझते हैं कि मांस मछली आदिमें शक्ति बढानेवाले पदार्थ अन्नादिसे अधिक हैं, यह बात भी ठीक नहीं है। The toiler and his food by Sir William Earnshaw Cooper, C. I. E. टाइलर एन्ड हिज फुड पुस्तकमें जिसको सर विलियम कूपरने लिखा है, भिन्न २ भोजनोंके शक्ति वर्द्धक अंश देकर दिखा दिया है कि मांस ग्रहणसे बहुत कम शक्ति आती है। उसीमेंसे कुछ सार नीचे दिया जाता है।

मांसमें शक्ति भाग।

पदार्थ	शक्तिवर्द्धक अंश कितना १०० मेंसे
(१) बादाम आदि गिरियां	९१ अंश
(२) सूखे मटर चने आदि	८७ ,,
(३) चावल	८७ ,,
(४) गेहूंका आटा	८६ ,,
(५) जौका आटा	८४ ,,
(६) सूखे फल किसमिस खजूरादि	७३ ,,
(७) घी शुद्ध	८७ ,,
(८) मलाई	६९ ,,
(९) दूध	१४ ,,
परन्तु इसमें ८६ अंश पानी भी लाभदायक है।	
(१०) अंगूर आदि ताजे फल	२५ ,,
परन्तु इनमें पानी भी लाभकारक है।	
(११) मांस	२८ ,,
पानी भी हानिकारक है।	
(१२) मछली	१३ ,,
(१३) अंडे	२६ ,,

विचारवानोंको अधिक शक्तिवर्द्धक पदार्थ खाने चाहिये। यह मांसाहार वास्तवमें निरर्थक है। वृथा ही पशुघातका कारण है।

इस मांसाहारकी निरर्थकतापर मिस एनी बेसेन्टके अनुयायी

थियोसोफिस्ट श्री० सी० जिनराजदास
जिनराजदासका मत। (कैंटब) एम० ए० बंबई जीवदया सभा
(३०९ सराफा बाजार) के वार्षिक उत्सव
ता० २ सितम्बर १९१८ को सभापतिके नातेसे कह चुके हैं—
"मांसाहार स्थूल बुद्धिसे होता है। युरुपके महायुद्धके पहले पश्चिमीय देशोंमें मांसाहारका विरोध उतना नहीं था जितना अब होगया है। लड़ाकू लोगोंको शाकाहारी होना पड़ा है; क्योंकि शाकाहारसे स्वभाव अच्छा रहता है। शाकाहारके विरुद्ध एक भी युक्ति नहीं है। पश्चिमीय देशोंमें दौड लगाने, बाइसिकिलपर चढने, कुश्ती लडने, आदिमें शाकाहारियोंने मांसाहारियोंपर बाजी मार ली है। ठंडे देशोंमें भी मांसाहारकी जरूरत नहीं है।

पश्चिमके देशोंमें हजारों शाकाहारी रहते हैं। मैं इंग्लैंडमें १२ वर्ष शाक भोजन पर रहा। अमेरिकाके चिकागो व कैनेडामें मैंने जाड़े शाकाहार पर काटे हैं तथा मांसाहारियोंकी अपेक्षा भले प्रकार जीवन बिताया है। जहां कहीं मानवोंकी उत्पत्ति है वहां प्रायः कोई न कोई वनस्पति फल आदि अवश्य पैदा होते हैं। क्योंकि जहां भूमि, जल, पवन, अग्नि और सूर्यके आतापका संबंध होगा वहांपर वनस्पति न हो यह असंभव है। इसलिये यदि बच्चोंको व मानवोंको मांस खानेकी आदत न डलवाई जावे और उनको शाकाहारपर रक्खा जावे तो वे अवश्य शाकाहार पर ही अपना जीवन बसर कर सकेंगे।

बहुतसे उपयोगी पशु जो खेती करनेवाले व दूध देनेवाले हैं मांसाहारके कारण मारे जाते हैं।

इस तरह निर्मल बुद्धिसे विचार किया जायगा तो विदित होगा कि मांसाहार वृथा ही घोर संकल्पी हिंसाका कारण है।

(१) जैनाचार्य मांसाहारका निषेध करते हैं—

श्री अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखते हैं—

न विना प्राणविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मांसं भजतस्तस्मात्प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥
यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥ ६६ ॥
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥
आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम् ॥ ६८ ॥

भावार्थ—विना प्राणघातके मांसकी उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिये मांस खानेवालेके लिये अवश्य हिंसा करनी पडती है। यद्यपि स्वयं मरे हुए भैंस बैलादिका भी मांस होता है परन्तु ऐसे मांसमें भी उसके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाले सम्मूर्छन त्रस जीवोंका घात करना पडेगा।

मांसकी डलियां चाहे कच्ची हों, या पक गई हों, या पक रही हों उनमें निरंतर उसी जातिके सम्मूर्छन त्रस जंतुओंकी उत्पत्ति होती रहती है। इसलिये जो कोई मांसकी डलीको कच्ची हो या पक्की हो खाता है या छूता है वह निरंतर इकट्ठे होनेवाले करोड़ों जंतुओंका घात करता है।

(१) श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहते हैं—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

भावार्थ—गणधरादि आचार्योंने बताया है कि गृहस्थियोंको आठ मूलगुण जरूर पालने चाहिये।

१—मदिराका पीना—इससे भाव हिंसा होती है व शराबके बननेमें बहुत जंतु मरते हैं।

२—मांसका त्याग। ३—मधुका त्याग—शराबके लेनेमें बहुत जंतुओंका घात करना पड़ता है।

४—स्थूल या संकल्पी हिंसा त्याग। ५—स्थूल झूठका त्याग। ६—स्थूल चोरीका त्याग। ७—स्वस्त्रीमें संतोष, परस्त्री त्याग। ८—परिग्रह या संपत्तिका प्रमाण।

(२) हिंदू शास्त्रोंमें भी बहुत जगह मांसका निषेध है।

मनुस्मृति—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

भावार्थ—प्राणियोंकी हिंसाके विना मांस उत्पन्न नहीं होता और न प्राणीवध स्वर्गका कारण ही हो सक्ता है। इसलिये मांसका त्याग करना चाहिये।

(३) बौद्ध शास्त्रोंमें—

प्राचीन संस्कृत लंकावतार सूत्रमें आठवें अध्यायमें मांसकी मनाही हरएक बौद्ध धर्म माननेवालेके लिये है। कुछ श्लोक हैं—

मद्यं मांसं पलाण्डुं च न भक्षयेयं महामुने।
बोधिसत्वैर्महासत्वैर्भाषद्भिर्जिनपुंगवैः ॥ १ ॥

लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसार्थं दीयते धनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्येते रौरवादिषु ॥ ९ ॥

योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशाथ दीक्षितः शाक्यशासने ॥ १० ॥

त्रिकोटिशुद्धं मांसं वै अकल्पितमयाचितं।
अचोदितं च नैवास्ति तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ १२ ॥

यथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत।
तथैव मांसमद्याद्य अन्तरायकरो भवेत ॥ २० ॥

भावार्थ—जिनेन्द्रोंने कहा है कि मदिरा मांस व प्याज किसी बौद्धको न खाना चाहिये। जो लाभके लिये पशु मारते हैं, जो मांसके लिये धन देते हैं दोनों ही पापकर्मी हैं, नरकोंमें दुःख पाते हैं। जो कोई मूर्ख मुनिके बचनको न मानकर मांस खाता है वह शाक्योंके शासनमें दोनों लोकके नाशके लिये दीक्षित हुआ है। विना कल्पना किया हुआ, विना भोगा हुआ व विना प्रेरणा किया हुआ मांस हो नहीं सक्ता इसलिये मांस न खाना चाहिये। जैसे राग मोक्षमें विघ्नकारक है वैसे मांस मदिराका खाना भी अंतराय करनेवाला है।

(४) ईसाई मत-में भी मांसका निषेध है।

Romans ch. 14-20. For meat destory not the work of God. All things indeed are pure;

but it is evil for that man who eateth with offence.

21. It is good neither to eat flesh, nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is offended or is made weak.

भावार्थ–रोमंस (अ० १४–२०) मांसके लिये परमात्माके कामको मत बिगाड़ो। सब वस्तुएं वास्तवमें पवित्र हैं। यह मानवके लिये पाप है : जो अपराध करके भोजन करता है। यही उत्तम है कि कभी मांस न खाओ, न मदिरा पीओ, न ऐसी चीज खाओ जिससे तेरा भाई दुःखी हो या निर्बल हो।

Genasis eh. 129.

Behold I have given you every best bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a true yeilding seed, to you it shall be meat.

भावार्थ–देखो! मैंने तुमको पृथ्वीपर दिखनेवाली घास दी है, जिस हरएकसे बीज पैदा होता है व बीज देनेवाले फलदार वृक्ष दिये हैं, वही तुम्हारे लिये भोजन होगा।

(५) मुसलिम धर्ममें भी फलादिके खानेकी आज्ञा है।

कुरानका इंग्रेजी उल्था रोडवेल कृत (१९२४)

(24) S. 80—Let man look at his food. It was we who rained down the copious rains,...... and caused the upgrowth of grain, and grapes and healing herbs and the alive and the palm

and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage, for the service of yourselves and your cattle. (20–40).

भावार्थ–मानवको अपने भोजनपर ध्यान देना चाहिये । हमने बहुत पानी बर्साया; अनाज, अंगूर, औषधियें, खजूर आदि उगवाए. उनके चारों तरफ वृक्षोंसे, फलोंसे व वनस्पतिसे घने भरे हुए बाग लगवाए, तुम्हारी और तुम्हारे पशुओंकी सेवाके लिये ।

(54) S. 50—And we send down the rain from heaven with its blessings, by which we cause gardens to spring forth and the grain of the harvest, and the tall palm trees with date bearing branches one over the other for man's nourishment.

भावार्थ–हमने पानी बरसाया जिससे बाग फले, फल लगे लम्बे वृक्ष खजूरोंसे भरे रहें, ये सब मानवके पोषणके लिये ।

(55) S. 20—He hath spread the earth as a bed and path traced out paths for you therein and hath sent down rains from heaven and by it we bring forth the kinds of various herbs—eat ye and feed your cattle.

भावार्थ–उसने पक्षीके बिछौनेके समान बिछाया है । तुम्हारे लिये मार्गके चिह्न बताए हैं । पानी बर्साया है जिससे नाना प्रकार वनस्पति पैदा हो; तुम खाओ और अपने पशुओंको खिलाओ ।

इन ऊपरके वाक्योंसे सिद्ध होगा कि हिंदू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान सर्व ही धर्मके आचार्य कहते हैं कि मानव फलादि अन्नादि

खाएं; मांस न खावें । खेद है इन सब धर्मके माननेवालोंमें बहुत लोग मांस खाते हैं । यह नहीं विचार करते हैं कि जब अन्न, फल, शाकादि मिलते हैं तब हम इसी वस्तुको क्यों खाएं जिससे मन भी कठोर हो, तन्दुरुस्ती न बढे, रोग पैदा हो, व जिसके लिये कसाईखानेमें पशुओंका घात किया जावे ।

हिंदू व बौद्धोंमें तो अहिंसाकी बड़ी महिमा है । मांसाहार घोर हिंसाका कारण है । जिनको अहिंसा प्यारी है मांसका त्याग ही करने योग्य है । ईसाई व मुसलमान धर्मवाले भी यदि अपने धर्मगुरुओंके दयाभाव व प्रेममय सदुपदेशोंपर ध्यान देंगे तो उनका भी दिल यही होगा कि मांस खाना हमारे छोटे भाई गरीब पशुओंके वधका कारण है, इसलिये नहीं खाना चाहिये ।

अध्याय नौवां ।

मौज शौकके लिये हिंसा ।

संकल्पी हिंसामें वह हिंसा भी गर्भित है जो हिंसा व्यर्थ की जाती है । जहां अहिंसासे काम चले व कम हिंसासे काम चले वहां हिंसा व अधिक हिंसाको करानेवाले काम करना संकल्पी हिंसामें आजाते हैं । बहुतसे लोग केवल मौज शौकके लिये हिंसाकी कारणभूत वस्तुओंका व्यवहार करते हैं । यदि वे चाहें तो वे उनको त्याग करके दूसरी अहिंसामय या कम हिंसाकारी वस्तुओंको काममें लेसके हैं । एक अहिंसाप्रेमी गृहस्थको विवेकी व विचारशील होना

चाहिये। वह विश्वप्रेमी होता है। इसलिये वह बेमतलब हिंसाके कामोंसे बचनेकी पुरी २ कोशिश करता है। इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं-

(१) चमड़ेकी चीजोंका व्यवहार–चमड़ेकी चीजोंके अधिक व्यवहारसे चमड़ेके लिये उपयोगी पशुओंका घात किया जाता है। जहांतक मरे हुए जानवरोंके चमड़ेका उपयोग है वहांतक तो एक साधारण बात है परन्तु जब चमड़ेके लिये पशु मारे जावें व सताए जावें तो चमड़ेकी वस्तुएं काममें लेना उचित नहीं है। जब कपड़ेके बने बिस्तरबंद, कमरबंद, बाक्स आदि व जूते तक मिल सके हैं तब चमड़ेके बने खरीदना उचित नहीं हैं। चमड़ेके बढ़िया जूते उस चमड़ेसे बनाए जाते हैं जो चमड़ा जीते हुए जानवरोंको कोड़े मारकर खाल फुलाकर खालको निकालकर बनते हैं, बड़ी निर्दयता है।

चमडेके अधिक व्यवहार होनेसे चमड़ेके कारखानेवाले चमडेको बेचनेवालोंसे चमडा मांगते हैं, तब उनको मरेहुए जानवरोंका चमडा मिलता है। मांग अधिक होती है, वे चमडेके व्यापारी छलसे ब्राह्मणका भेष बनवाके अपने आदमियोंको ग्राममें भेजते हैं। वे ब्राह्मण बनकर पुण्य करानेके हेतु गाएं भैंसे खरीद लाते हैं, फिर कसाईखानोंमें कटवा करके चमडा प्राप्त करते हैं। चमड़ेके व्यवहारसे दूध देनेवाले जानवरोंकी घोर हिंसा की जाती है। मानवोंको ऐसा मौज शौक न करना चाहिये जिससे निरपराधी पशु समाज तडफ-तडफ कर कष्ट पावें व मरें व हमारा मन केवल प्रसन्न हो। मानवोंको सिवाय अनिवार्य कारणोंके कहीं चमडेको काममें न लेना चाहिये।

कपड़ेके जूते दिहली व बरेलीमें बहुत बढ़िया बनते हैं, उनसे काम चल सक्ता है।

(२) मिलके बुने कपड़ोंका व्यवहार-जो कपड़ा विदेशोंमें या भारतमें मिलोंमें बनता है उन कपड़ोंमें बहुत अंशमें चरबी लगाई जाती है। चरबीसे तागे मिलकर बैठ जाते हैं। कपड़ा चिकना होता है। यह चरबी बहुत बढ़िया होती है। और परदेशमें बड़ी निर्दयतासे पशुओंसे निकाली जाती है। जीते हुए बैल आदि बड़े २ पशुओंको सांचेमें पैर काटकर खड़ा कर देते हैं और उनको उबालते हैं। ऐसी चरबी कपड़ोंमें लगाई जाती है। तब दयावानोंको कभी भी ऐसे कपड़ोंको काममें नहीं लेना चाहिये। हाथसे बुने कपड़ोंको ही काममें लेना चाहिये। खादी हो व दूसरे प्रकारके वस्त्र हों जो हाथसे बुने जायगे, उनमें चरबी न लगेगी तथा गरीब मजूरोंका भी भला होगा। वे रोजी पाकर भूखों न मरेंगे। मिलोंके कपड़ोंके पहननेसे धनिक लोग मालामाल होते हैं। गरीबोंको रोजी नहीं मिलती है। जो काम १००० आदमी करते हैं वह काम यंत्रोंके द्वारा दो चार आदमियोंके द्वारा होजाता है। दुनियामें बेकारी बढ़नेका मूल कारण यंत्रोंकी बनी वस्तुओंका व्यवहार है। हाथका बना कपड़ा पहनना गरीबोंके साथ करुणाभाव वर्तना है। हाथका बना कपड़ा मिलनेपर भी मौज शौकसे हिंसाकारी वस्त्र पहनना वृथाकी संकल्पी हिंसा है।

(३) रेशमी वस्त्रका व्यवहार-मौज शौकसे रेशमी वस्त्रका व्यवहार किया जाता है। रेशम बड़ी निर्दयतासे कीड़ोंको मारकर

निकाला जाता है। कीड़े अपने चारों तरफ रेशम कातते हैं। जब गोला तय्यार होजाता है व उडकर जानेवाले होते हैं, वे गोलेको काटकर एक तरफसे निकल सक्ते हैं। लोभी मानव रेशम कट न जावे इस लोभसे उन कीड़ोंके गोलेसे निकलनेके पहले ही गरम २ पानीके कढ़ाओंमें गोलोंको डाल देते हैं। वे कीड़े वडफ२ कर मरते हैं। जिन्होंने हमारे लिये रेशम बनाया उनको हम मारडालते हैं। यदि लोभ कम करे व उनको निकलजाने दें तो उनकी जान भी बच सक्ती है और हमें रेशम भी मिल सक्ता है। क्योंकि साधारण जनसमूह इस भावसे विहीन है। तब दयावानोंको दूसरा कपड़ा मिलते हुए रेशमके कपड़ोंका व्यवहार नहीं करना चाहिये। रुईके कपडे हर तरहके मिल सक्ते हैं तब रेशमके कपड़ोंको मौजशौकके लिये पहनना हमारा अविवेक है।

(४) हाथकी बनी वस्तुओंका व्यवहार—मिलोंमें बनी हुई चीजें हिंसाकारक होती हैं। गरीबोंकी घातक हैं। तब दयावानका कर्तव्य है कि जहांतक हाथकी बनी वस्तुएं मिलें वहांतक मिलोंकी चीजें काममें न लेवें।

(५) हाथका पीसा आटा—हजारों विधवाओंको रोटी देनेवाला है व तंदुरुस्तीको भी बनाता है। मिलोंका पीसा न खाना ही उचित है। हाथके साफ किये हुए चावल अनेकोंको रोजी देनेवाले हैं। हाथका बना हुआ गुड़ गरीबोंका उद्धार करनेवाला है। बैलोंकी घानीसे निकाला हुआ तेल ठीक है। ग्रामोंमें किसान लोग रहते हैं उनको खेतीके सिवाय बहुतसा समय बचता है उस समयमें यदि

वे हाथोंका उद्योग करें तो वे गरीबीसे दुःख न पावें। सब कर्जदार न बने रहें। यह तब ही संभव है जब हम सब यह मानवजातिके साथ प्रेम रक्खे कि वे काम पावें। हम नियमसे हाथकी बनी वस्तुओंका व्यवहार करें।

गरीबोंकी रक्षाका बड़ा भारी उपाय ग्रामोद्योगको बढ़ाना है। इसी तरह हरएक काममें ज्ञानी विचार करता है। जहां कम हिंसासे काम चले वहां अधिक हिंसा नहीं करता है। अहिंसा धर्म है, हिंसा अधर्म है, तब विवेकीको जितने संभव हो हिंसासे बचकर अहिंसापर चलना चाहिये।

अध्याय दशवां।

सेवाधर्म अहिंसाका अंग है।

अहिंसाके दो भाग हैं-एक तो प्राणियोंके प्राणोंकी हानि नहीं करना। दूसरे उनके प्राणोंकी रक्षा करना या उनके जीवन निर्वाहमें व उनकी उन्नतिमें अपनी शक्तियोंसे सहायक होना। इस दूसरे कामके लिये सेवा बुद्धिकी जरूरत है। धर्म उसे ही कहते हैं जिससे उत्तम आत्मीक भीतरी सुख मिले। जितना २ मोहका त्याग होगा सच्चा सुख भीतरसे झलकेगा। जब किसी बातकी कामना नहीं करके सेवा की जाती है, कोई लोभ या मान नहीं पोषा जाता है, केवल विश्वप्रेम या करुणाभावसे प्रेरित होकर दूसरोंका कष्ट निवारण किया जाता है या उनके लिये अपने माने हुये धन

धान्यादि पदार्थसे मोह त्यागा जाता है तब यकायक भीतरी सुख झलक आता है, विना चाहते हुए भी सुख स्वादमें आता है। इसलिये निःस्वार्थ या निष्काम सेवाको धर्म कहते हैं। मानव विवेकी होता है, सच्चे सुखका ग्राहक होता है, तब हरएक मानवको निःस्वार्थ सेवाधर्म पालना ही चाहिये। मानव सब प्रकारके प्राणियोंमें श्रेष्ठ है बड़ा है। बड़ेका कर्त्तव्य है कि वह सबकी सेवा करे। जो सेवा करता है वह बड़ा माना जाता है। सूर्यके आतापसे जगतभरको लाभ पहुंचता है, वह बड़ा माना जाता है। जगतमें उनकी पूजा व मान्यता होती है, जो परहितमें कष्ट सहते हैं व दूसरोंका उपकार करते हैं।

सेवाधर्म या परोपकारका पाठ किसी वृक्षोंसे तथा नदी सरोवरोंसे सीखना चाहिये। वृक्षोंमें अन्न फलादि फलते हैं वे स्वयं उपयोग नहीं करते हैं, वे दूसरोंको ही देदेते हैं। वृक्षमें एक ही फल बचेगा तो भी वह लेनेवालेको रोकेगा नहीं। नदियां व सरोवरोंका पानी विना रोक टोक खेतीके व पीनेके काममें आता है। मानव, पशु, पक्षी, मच्छ सब काममें लेते हैं, किसीको रुकावट नहीं है। चुल्लूभर पानी भी यदि किसी तालावमें बाकी है तो भी किसी पक्षीको पीनेसे मना नहीं करता है। यही उदारता मानवोंको सीखनी चाहिये। परोपकाराय सतां विभूतयः सज्जनोंकी सम्पदा परोपकारके लिये होती है। धनवानोंको सीखना चाहिये कि धन गरीबोंसे ही जमा किया जाता है तब धनको गरीबोंके उपकारमें खर्च करना चाहिये, यही धनकी शोभा है। हरएक मानवको अहिंसा धर्मपर

विश्वास रखते हुए परोपकार करना चाहिये । जैनसिद्धांतमें चार दान बताए हैं—

(१) आहारदान-भूखोंकी क्षुधा मेटनेको योग्य अन्नादि प्रदान करना चाहिये ।

(२) औषधिदान-रोगोंके दूर करनेके लिये शुद्ध औषधियां बांटना चाहिये ।

(३) अभयदान-प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये । सब जीव भयवान हैं कि कोई हमारे प्राण न लेवे, तब उनको निर्भय कर देना चाहिये ।

(४) विद्यादान-ज्ञानका प्रचार करना चाहिये ।

चारों दानोंके प्रचारके लिये अनाथालय, औषधालय, अस्पताल, धर्मशाला, विद्याशाला, कालेज, युनिवर्सिटी, ब्रह्मचर्याश्रम, महिला विद्यालय, कन्याशाला, आदि संस्थाओंको खोलना चाहिये । इन दानोंसे जगतके प्राणियोंकी आवश्यक्ताएं पूरी होंगी ।

मानवोंके लिये सेवाके क्षेत्र बहुत हैं । कुछ यहां गिनाए जाते हैं—

(१) आत्माकी सेवा-आत्मामें ज्ञान, आत्मबल व शांति बढ़ाकर इसे मजबूत व सहनशील बनाना चाहिये । जिनकी आत्मा बलवान होती है, जो कष्टोंको शांतिसे सहन कर सक्ते हैं वे ही परोपकार निर्भय होकर व खूब आपत्ति सहकर कर सक्ते हैं । आत्माको उच्च बनाना जरूरी है । यही वह इंजिन है जिससे परोपकारकी गाडी चलाई जाती है । आत्मबल बढ़ानेके लिये हरएक मानवको जैसा हम पहले बता चुके हैं आत्माका ध्यान करना

चाहिये। यह आत्मा स्वभावसे परमात्मा है, ज्ञान स्वरूप है, परम शांत है, परमानंदमय है। आत्मीक व्यायामसे आत्मा बलवान होता है। सवेरे शाम आत्मध्यान करे, परमात्माकी भक्ति, शास्त्र पढ़ना, सत्संगति भी आत्माके बलको बढ़ाते हैं। हमारा वर्तन अहिंसाके तत्वपर न्याययुक्त होना चाहिये। दूसरेको ठगनेका विचार न करना चाहिये। व्यवहार सत्य व ईमानदारीका होना चाहिये। हमें ५ इंद्रियोंका दास न होकर उनको वशमें रखना चाहिये व उनको न्यायपंथपर चलाना चाहिये व क्रोध, मान, माया, लोभको जीतना चाहिये। अपने सदाचारसे भावोंको ऊंचा बनाना चाहिये। हमको सात व्यसनोंसे या बुरी आदतोंसे बचना चाहिये। वे सात हैं। (१) जूआ खेलना, (२) मांस खाना, (३) मदिरा पीना, (४) चोरी करना, (५) शिकार खेलना, (६) वेश्या भोग, (७) परस्त्री भोग।

न्यायसे धन कमाना व आमदनीके भीतर खर्च रखना चाहिये। कर्जदार कभी न होना चाहिये। नामवरीके लिये अपनेको लुटाना न चाहिये। अहिंसा व सत्य मित्रोंके साथ वर्तना चाहिये, कष्ट पड़नेपर आत्माको अजर अमर समझकर साहसी व धैर्यवान रहना चाहिये। जो आत्माके श्रद्धावान व चारित्रवान हैं वे ही सच्चे विश्वप्रेमी होते हैं। वे अपने आत्माके समान दूसरोंकी आत्माओंको भी समझते हैं। कोई दूसरोंको कष्ट देना आपको ही कष्ट पहुंचाना समझते हैं। निरंतर आत्मध्यान व स्वाध्याय व पूजा भक्तिसे आत्माकी सेवा करनी योग्य है।

(१) शरीरकी सेवा—जिस शरीरके आश्रय आत्मा रहता है

इस शरीरको तंदुरुस्त, काम करनेमें तय्यार बनाए रखना जरूरी है । रोगी शरीरमें रहनेवाला सेवाधर्म नहीं बना सक्ता है । शरीरको स्वास्थ्ययुक्त बनानेके लिये तीन बातोंकी जरूरत है–

(१) शुद्ध खानपान हवा–हमें ताजी हवा लेना चाहिये। जहां हम बैठें व सोएं व सैर करें वहां हवा गंदी न होनी चाहिये । घरमें व चारों तरफ सफाईकी जरूरत है, मलमूत्रकी दुर्गंध न आनी चाहिये। पानी छानकर देखकर पीना चाहिये । गंदगीका संदेह हो तो औटा-कर पीना चाहिये । भोजन ताजा शाक अन्न फल घी दूधका करना चाहिये । मात्रासे कम खाना चाहिये । तब भोजन पेटकी जठराग्निमें भलेप्रकार पक सकेगा ।

हमें शराब मांस व बासी भोजन न खाना चाहिये । भूख लगनेपर खाना चाहिये । भूख न लगे तो एक दफे ही खाना चाहिये ।

(२) व्यायामका अभ्यास रोज करना चाहिये । कसरत करनेसे शरीर दृढ़ होता है। नाना प्रकारके दंड बैठक कुश्ती तलवा-रादिके खेल मानवके शरीरको उत्साहवान बनाते हैं । व्यायामसे शरीरका मल दूर होता है । ताजी हवा शरीरमें प्रवेश करती है। काम पड़नेपर अपनी व परकी रक्षा कर सक्ता है ।

(३) ब्रह्मचर्य–वीर्य रक्षा करना, काम विकारोंसे बचना शरीरका परम रक्षक है। वीर्य शरीरका राजा है, भोजनका सार है, जो तीस दिनमें तय्यार होता है । वीर्यके आधारपर ही हाथ पग भुजामें शक्ति होती है । विद्यार्थियोंको वीस वर्ष तक विवाह न कराकर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना चाहिये–तबतक विवाह न करना चाहिये।

स्त्रियोंको १६ वर्षतक कौमार्यव्रत पालना चाहिये। विवाहिता होनेपर पुरुष व स्त्रीको परस्पर संतोष रखना चाहिये। पर पुरुष व पर स्त्रीकी वांछा न करनी चाहिये। जैसे बीजको किसान अपने ही खेतमें फसलकर बोता है, उसे न तो दूसरोंके खेतमें बोता है और न मोरियोंमें फेंकता है, इस तरह गृहस्थको चाहिये कि अपने वीर्यको अपनी ही स्त्रीमें सन्तानके लिये काममें लें, उसका उपयोग परस्त्रियोंमें व वेश्या आदिमें न करना चाहिये। ब्रह्मचर्यके विना शरीर मजबूत फुरतीला नहीं बनेगा।

इन तीन बातोंकी सम्हाल करके शरीरको निरोगी, बलवान, निरालसी रखना शरीरकी सेवा है।

(२) अपनी स्त्रीकी सेवा-गृहस्थ पतिकी धर्मपत्नी परम मित्रा होती है। इसे मित्रके समान देखना चाहिये, दासी नहीं समझनी चाहिये। स्त्री यदि पढ़ी लिखी न हो, धर्मशास्त्र, जीवनचरित्र, समाचार पत्र न बांच सक्ती हो तथा उसके विचार केवल गहने कपड़ामें ही अटके रहे—वह धर्मसेवा, जातिसेवा, देशसेवाके योग्य न हो तब पतिका परम कर्तव्य है कि इसे रोज शिक्षा दे। पढ़ना लिखना सिखाकर उत्तम २ पुस्तक पढ़नेको दे, उसे सच्ची सेविका बनादे। वह बच्चेकी माता है। यदि माताको योग्य बना देंगे—सुशिक्षिता, धर्मात्मा, परोपकारिणी बना देंगे तो उसे एक गुरानी तैयार करदेंगे, उसके गोदमें पले बच्चे छोटी वयमें बड़ी २ बातें सीख जांयगे। जो शिक्षाका असर बालपनमें होजाता है वह जन्मभर रहता है। कहा है 'Mothers are builders of nation'

माताएं कौमकी बनानेवाली हैं। अपनी स्त्रीको योग्य गृहिणी व माता बना देना स्त्री सेवा है।

(४) पुत्र पुत्री सेवा—संतानको जन्म देना सुगम है परन्तु संतानको योग्य व शिक्षित बनाना दुर्लभ है। कन्याओंको व पुत्रोंको दोनोंको धार्मिक व लौकिक उपयोगी शिक्षाओंसे विभूषित करना चाहिये। वे अबोध हैं, अपना हित अहित नहीं समझते हैं उनको विद्या—संपन्न, बलवान, मिष्ठ हितमित सत्यभाषी, सुविचारशील मन-वाले आत्मज्ञानी बनाना जरूरी है, उनको परोपकारी बनाना आवश्यक है। जब लड़की १४, १५, १६ वर्षकी होजाय व पुत्र २० वर्षका होजावे तब उनके विवाहकी चिंता करनी चाहिये। विवाह होने तक पुत्र पुत्रीको अखंड ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। पुत्रीके विवाहमें यह सम्हाल रखनेकी जरूरत है कि इसका जीवन कभी दुःखमय न होजावे। योग्य वर तलाश करना चाहिये। वृद्ध व अनमेल पुरुषसे न विवाहना चाहिये, कन्यासे वर दुगनेसे अधिक बड़ा न होना चाहिये, रुपया लेकर अयोग्य पुरुषको विवाहना ठीक नहीं है, न पुरुषको कन्यावालेसे दहेजका ठहराव करना चाहिये। कन्याका योग्य लाभ तब ही होगा जब वर वधूके शरीर व गुणोंपर ध्यान दिया जायगा। विवाह भी सादगीसे थोडे खर्चमें करना चाहिये, अधिक रुपया संतानोंके पढ़ानेमें लगाना चाहिये। पुत्रका विवाह करनेके पहले यह भलेप्रकार जान लेना चाहिये कि यह पुत्र अपने खर्च लायक आमदनी कर सक्ता है या नहीं। उसको कोई काम देना चाहिये। जैसे वैश्य पुत्रको कुछ माल

विक्रयके लिये व माल खरीदनेके लिये भेजना चाहिये, यदि वह लाभ करके आवे तो निश्चय करना चाहिये कि यह अपने कुटुम्बको पाल सकेगा तब पुत्रका विवाह करना चाहिये। यदि कोई पुत्र विशेष विद्या पढ़ना चाहता हो व ब्रह्मचर्य पाल सके तो उसका विद्या पढ़ने तक विवाह न करना चाहिये। यही वर्ताव किसी विद्याप्रेम-कारिणी कन्यासे करना चाहिये। यदि कोई पुत्र व पुत्री वैराग्य व सेवा धर्मसे प्रेरित होकर जन्म पर्यंत ब्रह्मचर्य पालना चाहें तो उनको इस आदर्श जीवन बितानेमें बाधा न डालना चाहिये। प्रयोजन यह है कि मातापिताको उनके बालकोंसे मोह न करके उनकी आत्मासे प्रेम करके उनका सच्चा हित जिससे हो वैसा उपाय करना चाहिये। उनको स्त्रीरत्न व पुरुषरत्न बना देना चाहिये। यही अपनी संतानोंके साथ सच्ची सेवा है।

(५) **कुटुम्ब या सम्बन्धी सेवा**—हरएक मानवके कुटुंबमें भाई, बहन, भौजाई व उनकी संतानें होती हैं व दूसरे मामा, फूफा आदि सम्बन्धी रिश्तेदार होते हैं। माता व पिताके पक्षसे अनेक संबन्धी होते हैं इनकी भी सेवा करनी चाहिये। जिनकी आजीविका न चलती हो उनकी रोजी लगा देनी चाहिये, बीमार हो तो दवा दूध या घीका प्रबन्ध कर देना चाहिये। लड़के लड़कियोंकी शिक्षामें मदद देनी चाहिये। विधवा, वृद्ध, अनाथोंको आवश्यक सामग्री पहुंचानी चाहिये। कोई यह न कहे कि इनके फलां रिश्तेदार है, यह महान दुखी। है बंधुरना तब ही सफल है जब हम उनके कष्टोंमें काम आवें, उनके लिये तन मन धन अर्पण करें।

(६) कौमी या जाति या समाज सेवा–हरएक मानव किसी न किसी जातिसे या समाजसे या कौमसे अपना सम्बन्ध रखता है। वह उसकी अपनी कौम, जाति, या समाज होजाती है। अपनी कौमको या समाजको उन्नति पर लाना और उसकी अवनति मिटाना समाजसेवा Social Service है। कौमके लिये हरकोई लड़का लड़की धार्मिक व लौकिक शिक्षासे विभूषित होजावे इसलिये स्त्रियों व पुरुषोंके लिये अनेक संस्थाएं खोलनी चाहिये। इसके लिये धनवानोंको धन देना चाहिये, विद्वानोंको अवैतनिक या कम वेतन लेकर पढ़ानेका काम करना चाहिये। व्यापारिक व औद्योगिक शिक्षाका प्रचार करना चाहिये। तन्दुरुस्तीके लिये व्यायामशालाएं या अखाड़े खोलने चाहिये। मासिक व पाक्षिक सभा करके उत्तम २ उपदेशोंसे समाजको जागृत करना चाहिये। रोग निवारणार्थ कौमी औषधालय खोलना चाहिये। स्वदेशी वस्तुओंका प्रचार करना चाहिये। जन्मसे मरण तकके खर्चोंको ऐसा कम कर देना चाहिये कि एक २५) मासिक कमानेवाला एक मासकी आमदनीसे निर्वाह कर सके। भाररूप सामाजिक खर्च हटा देना चाहिए। मरणके होनेपर जाति जीमनकी प्रथा मिटानी चाहिए। कन्या व वरविक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल विवाह रोकने चाहिये। समाजमें एकता स्थापन करके संगठन बनाना चाहिये। अपनी २ कौमकी तरक्की करना देशकी तरक्की है। देश कौमोंका समूह है।

शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, परिमित व्यय, कुरीति निवारण व

व्यापारकी वृद्धिसे कौम चमक जाती है, कौमको गरीबीसे दूर रखना चाहिये, परस्पर एक दूसरेको मदद करनी चाहिये, कौमी सेवा बड़ी सेवा है।

(७) **ग्राम या नगर सेवा**—जिस ग्राम या नगरमें जो रहता है वह उसका मातृग्राम या मातृनगर होजाता है। तब सर्व ग्रामवालोंसे या नागरिकोंसे प्रेम रखना चाहिये व ग्राम व नगरके निवासियोंकी उन्नति करनी चाहिये। स्वच्छताका प्रचार करना, स्वास्थ्यके नियमोंका फैलाना बड़ा जरूरी है जिससे वहां रोग न फैले। ग्राम व नगरनिवासियोंको सबको अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिये जिससे उनको लिखना पढ़ना आ जावे। उक्त शिक्षाके लिये स्थानीय साधन करना चाहिये या छात्रवृत्ति देकर बाहर पढ़ने भेजना चाहिये। सर्व ग्रामवाले स्वदेशी वस्तुएं व्यवहार करें ऐसा उपाय करना चाहिये। ग्रामोद्योगोंका प्रचार करना चाहिये। जैसे-रुई कातना, कपड़ा बुनना, चटाई बनाना, कपड़ा सीना, बर्तन बनाना, गुड़ तैयार करना, आटा हाथसे पीसना, चावल हाथसे निकालना, कागज़ बनाना आदि २ कारीगरीका प्रचार करना चाहिये। जिससे खेती करनेवाले खाली समयमें कोई न कोई उद्योग कर सकें। ग्राम पंचायत बनाले, पंचायत करके मुकद्दमोंको उन पंचायतोंसे फैसल कराना चाहिये। सदाचारका प्रचार करना चाहिये। मादक पदार्थोंका व मांसका विक्रय हटवाना चाहिये। पशुबलि रुकवाना चाहिये। जुएका प्रचार बंद कराना चाहिये। वेश्याओंके अड्डे हटवाना चाहिये। शुद्ध घी, दूध, मिठाई

व सामान विक्रयका प्रबन्ध करना चाहिये। बेईमानीके लेनदेनको मिटाना चाहिये। बुराईमें फंसानेवाले तमाशे न होने देना चाहिये। खोटे साहित्य व समाचार पत्रोंको रोकना चाहिये। एक अच्छा पुस्तकालय बनाना चाहिये जहां ग्रामके लोग सर्व प्रकारके उपयोगी समाचार पत्र पढ़ें व पुस्तकें पढ़ें व पढ़नेको ले जावें व दे जावें। ग्राम व नगरवासियोंको मिलकर नगरके निवासियोंको हर तरह सुखी बनाना चाहिये। गरीबों व मजूरोंको व सेवकोंको ऐसी मजूरी देनी चाहिये जिससे वे कुटुम्बको पेटभर खिला सकें व कपड़ा खरीद सकें। मैले कुचैले न रहें। बहुधा छोटी कौमे कम मजूरी पाती हैं इससे भोजन भी पेटभर नहीं कर सक्ती हैं, कपड़ा खरीदना तो कठिन बात है। इस कठोर प्रथाको मिटाना चाहिये। व्याजकी दर परिमित करनी चाहिये। गरीबोंसे बहुत अधिक व्याज लिया जाता है सो इस अन्यायको हटाना चाहिये। किसानोंको पवित्र समझ कर उनके कष्ट मिटाना चाहिये। दया, न्याय, प्रेमका ग्राममें व नगरमें व्यवहार हो ऐसा उपाय करना चाहिये।

यदि कई धर्मके माननेवाले हों तो उनमें नागरिक प्रेम अवश्य होना चाहिये। एक दूसरोंके धर्मसाधनमें व उत्सवोंमें विरोध न करना चाहिये। मेलसे व स्नेहसे ग्रामीण व नागरिक होनेकी शोभा है।

(८) देशसेवा—हरएक मानवका किसी न किसी देशसे संबंध होता है वह देश उसका देश कहलाता है। देशसेवासे प्रयोजन यह है कि देशके निवासी सुखशांतिसे उन्नति करें व देशका प्रबन्ध देशके लोगोंकी सम्मतिसे ऐसा बढ़िया हो कि भूमिके द्वारा

उत्पन्न न्यायसे की जावे व उस आमदनीको जरूरी कामोंमें प्रजाकी सम्मतिसे खर्च की जावे। देशमें व्यापार व शिल्पकी उन्नति हो कोई पराधीनता न हो जो प्रजाकी उन्नतिमें बाधक हो। प्रजा स्वाधीनतासे रहकर शिल्पमें व व्यापारमें उन्नति करे। शासनके अधिकारी अपनेको प्रजाके सेवक समझें। देश समृद्धिशाली हो। यदि अपना देश स्वाधीन न हो व अन्य देशके मुकाबलेमें अवनत हो तो देशको स्वाधीन करनेमें व ऐश्वर्यशाली बनानेमें अपना तन मन धन आदि खर्च करना देशसेवा है। देशके भीतर एकता स्थापन करके संगठन बनाना चाहिये व पराधीनता हटानेके लिये उचित उद्योग करना चाहिये। स्वदेशकी बनी हुई वस्तुओंका नियमसे व्यवहार करना चाहिये। देशी उद्योगोंको व व्यापारको बढ़ाना चाहिये। लक्ष्मीकी वृद्धिसे ही सब और बातें बढ़ जाती हैं। गरीबीसे सर्व बातोंमें कमी रहती है। जैसे—उदयपुर मेवाडके स्वामी राणा प्रतापको एक जैन सेठ भामासाहने करोडोंकी सम्पत्ति दे दी कि वे अपने देशकी रक्षा मुसलमानोंके आक्रमणसे करें। यह उसकी देशसेवा थी। देशके लिये सर्वस्व न्योछावर कर देना देशसेवा है।

(९) जगतसेवा—जगतभरके मानवोंकी सेवा यह है कि जगत्के प्राणी न्याय व अहिंसाके तत्वको समझकर न्यायवान व अहिंसक बने। इसके लिये जगत्भरमें सच्चे विद्वान उपदेशक भ्रमण कराने चाहिये व जगतकी भिन्न २ भाषाओंमें अच्छी २ पुस्तकें प्रकाश करके फैलानी चाहिये। जगत्के प्राणी एकता व प्रेमसे रहें, परस्पर युद्ध न करें तो जगतभरमें शांति रहे व जगतभरकी

उन्नति हो। सब सुखी रह व अपने उचित कर्तव्यका पालन करें।

(१०) पशुसेवा-मानवोंकी सेवाके साथ पशु समाजकी भी सेवा करनी योग्य हैं। पशु मूंगे होते हैं, अपना कष्ट मानवोंके समान कह नहीं सक्त हैं। उनके साथ निर्दयताका व्यवहार न करना चाहिये। वृथा सताना न चाहिये। उनके स थ प्रेम रखके उनके ऊपर होनेवाले अत्याचारोंको मिटाना चाहिये। गाय, भैंस, घोडा, ऊंट, हाथी, बैल आदि पशुओंसे काम लेना चाहिये, परन्तु अधिक बोझा लादकर व अन्नपान चारा न देकर अथवा कम देकर सताना न चाहिये। भूखे जानवरोंको खिलाना चाहिये। कुत्ते, बिल्ली, कबूतर, काकादि घरोंमें घूमते रहते हैं। उनको यह आशा होती है कि कुछ खानेको मिल जायगा। दयावानोंको उनकी आशा पूरी करनी चाहिये। चींटियोंको भी आटा व शक्कर खिलाना चाहिये। दयाभाव रखके उनकी भी यथाशक्ति सेवा करना मानवका धर्म है।

(११) वृक्षादिकी सेवा-वृक्षादि भी जीना चाहते हैं। उनको भी पानी पहुंचाना चाहिये, उनकी भी रक्षा करनी चाहिये, वृथा तोडना व काटना न चाहिये। उनसे पैदा होनेवाले फल फूलोंको काममें लेना चाहिये। जरूरतसे अधिक वनस्पतिका छेदन भेदन न करना चाहिये। पानी नहीं ढोलना चाहिये, आग नहीं जलाना चाहिये, पवन नहीं लेना चाहिये, जमीन नहीं खोदनी चाहिये। एकेन्द्रिय स्थावर प्राणियोंपर भी दयाभाव रखके उनको वृथा कष्ट न देना चाहिये। इसतरह सेवाधर्म हमको यह सिखलाता है कि

हम प्राणी मात्रकी सेवा करें, सर्व विश्वका हित करें, सर्वसे मैत्री रखें। हमारी दृष्टिमें यह रहे कि हम जगत मात्रका उपकार करें। जो परोपकारी सेवाधर्म पालते हैं वे सदा सुखी रहते हैं।

अध्याय ग्यारहवां ।

गृहस्थी अहिंसाके पथपर ।

अहिंसाका सिद्धांत बहुत ऊंचा है। बुद्धिपूर्वक पूरी अहिंसाका साधन साधुपदमें हो सक्ता है। गृहस्थी संकल्पी हिंसा त्याग कर सक्ता है, आरंभी नहीं छोड सक्ता है, तौ भी वह धीरे २ अहिंसाके मार्ग पर बढ़ता जाता है। किस तरह हिंसासे बचता हुआ अहिंसाके पूर्ण साधनपर पहुंचता है, इसके लिये जैनाचार्योंने गृहस्थोंकी ग्यारह श्रेणियां या प्रतिमाएं बताई हैं, उनका संक्षेप कथन नीचे प्रकार है—

ग्यारह प्रतिमाएं।

(१) दर्शन प्रतिमा—अहिंसा धर्मका या भाव अहिंसा व द्रव्य अहिंसाका पूरा २ श्रद्धान रक्खे व आठ मूलगुणोंको पाले। मदिरा, मांस, मधुका सेवन नहीं करे व पांच अणुव्रतोंका अभ्यास करे, संकल्पी हिंसा न करे, स्थूल असत्य न बोले, चोरी न करे, स्वस्त्रीमें संतोष रक्खे व परिग्रहका प्रमाण करले। पानी छानकर व शुद्ध करके पीवें, रात्रिको भोजन न करनेका अभ्यास करें, चार गुणोंको धारण करें। (१) प्रशम—शांतिभाव, (२) संवेग—धर्मसे अनुराग, संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य, (३) अनुकम्पा—प्राणीमात्र

पर दयाभाव, (४) आस्तिक्य—आत्मा व अनात्माकी व परलोककी श्रद्धा । वृथा आरंभी हिंसासे बचनेकी कोशिश करे ।

(२) व्रत प्रतिमा—बारह व्रतोंको पाले। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत हैं।

पांच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण इन पांच अणुव्रतोंके पांच पांच अतिचार या दोष बचाने चाहिये ।

अहिंसा अणुव्रतके पांच अतीचार—

क्रोधादि कषायके वश हो कुआशयसे—(१) बांधना या रोकना, (२) लाठी आदिसे मारना , (३) अंगोपांग छेदना, (४) अधिक बोझा लादना, (५) अन्नपान रोक देना ।

सत्य अणुव्रतके पांच अतीचार—

(१) मिथ्या कहनेका उपदेश देना, (२) स्त्री पुरुषकी बातें प्रगट करना, (३) झूठा लेख लिखना, (४) झूठ बोलकर अमानत ले लेना, (५) शरीरके आकारसे जानकर किन्हींका मंत्र प्रगट कर देना।

अचौर्य अणुव्रतके पांच अतीचार—

(१) चोरीका उपाय बताना, (२) चोरीका माल लेना, (३) राज्य विरुद्ध होनेपर न्यायका उल्लंघन करना, (४) कम व अधिक तोलना मापना, (५) झूठा सिक्का चलाना, खरीमें खोटी मिलाकर खरी कहना ।

ब्रह्मचर्य अणुव्रतके पांच अतीचार—

(१) अपने कुटुम्बीके सिवाय दूसरोंके विवाह मिलाना, (२)

व्याही हुई व्यभिचारिणी स्त्रीके पास न जाना, (३) वेश्यादिके पास आना जाना, (४) कामके अंग छोड़ अन्य अंगसे कामकी चेष्टा करनी, (५) कामभोगकी तीव्र लालसा रखनी।

परिग्रह परिमाण व्रतके पांच अतीचार—

दश प्रकारके परिग्रहका प्रमाण करना योग्य है-(१) खेत व जमीन कितनी, (२) मकान क, (३) चांदी कितनी, (४) सोना जवाहरात कितना, (५) गौबैल आदि कितने, (६) अनाज कितना व कहांतक, (७) दासी, (८) दास, (९) कपड़े, (१०) बर्तन। दो दोके पांच जोड़ करने जैसे—भूमि मकान, चांदी सोना, धन धान्य, दासी दास, कपड़े बर्तन। हरएक जोडमें एकको घटाकर दूसरेको बढ़ा लेना दोष है।

इस प्रतिमावालेको पांच अणुव्रतोंको दोष रहित पालना चाहिये।

सात शील-अर्थात् तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत हैं। इनके भी पांच पांच अतीचार हैं। व्रत प्रतिमामें इनके बचानेकी कोशिश करनी चाहिये। आगकी श्रेणियोंमें ये पूर्ण बच सकेंगे।

तीन गुणव्रत-इनको गुणव्रत इसलिये कहते हैं कि इनसे अणुव्रतोंकी कीमत बढ़ जाती है। जैसे ४ को ४ से गुणनेपर १६ हो जाते हैं।

(१) **दिग्विरति गुणव्रत**-लौकिक कामके लिये दश दिशाओंमें जाने व लेनदेन करनेकी मर्यादा बांधना। इसके बाहर वह हिंसादि पांच पाप बिलकुल न करेगा।

पांच अतीचार—

१-ऊपरकी तरफ मर्यादा उलंघ जाना. २-नीचेके तरफ मर्यादासे बाहर चले जाना, ३-आठों दिशाओंमें मर्यादासे बाहर चले जाना, ४-किसी तरफ जानेका क्षेत्र बढ़ा लेना कहीं घटा लेना, ५-मर्यादाको भूल जाना।

(२) देशव्रत गुणव्रत-दिग्विरतिमें जो मर्यादा जन्म तककी हो उसमेंसे घटाकर जितनी दूर काम हो उतनी दूर तककी मर्यादा कुछ नियमसे एक दिन आदिके लिये कर लेना। इससे लाभ यह होगा कि नित्य प्रति थोडी हदमें ही पांच पाप करेगा। व्रतोंका मूल्य बढ़ गया।

(३) अनर्थदंडविरति गुणव्रत-कीहुई क्षेत्रकी मर्यादाके भीतर व्यर्थके पाप नहीं करना जैसे (१) पाप करनेका दूसरेको विना प्रयोजन उपदेश देना, (२) किसीकी बुराई मनमें विचारते रहना, (३) खोटी कहानी किस्से सुनना, (४) हिंसाकारी खड्ग आदि मांगे देना, (५) प्रमादसे या आलस्यसे वेमतलब कार्य करना जैसे पानी फेंकना, वृक्ष छेदनादि।

पांच अतीचार—

(१) भंड वचन वोलना (२) भंड वचनोंके साथ कायकी कुचेष्टा करना, (३) वहुत वकवाद करना, (४) विना विचारे काम करना, (५) भोगोपभोग सामग्री वेमतलब जमा करना।

चार शिक्षाव्रत-इससे साधुके चारित्रकी शिक्षा मिलती हैं।

(१) सामायिक-सवेरे, दोपहर, शाम तीन या दो या एक

दफे एकांतमें बैठकर अर्हंत सिद्धका स्मरण करके संसार शरीर भोगको असार विचार कर शुद्धात्माका मनन करें।

पांच अतीचार—

(१) मनके भीतर खोटा विचार करना, (२) किसीसे बातें कर लेना, (३) कायको आलस्यरूप रखना, (४) निरादरसे सामायिक करना, (५) सामायिकमें पाठ जाप भूल जाना।

(२) प्रोषधोपवास-दो अष्टमी व दो चौदस माहमें चार दिन गृहस्थके कामादिको बंद रखकर उपवास करना या एकाशन करना, धर्मध्यानमें चित्त लगाना।

पांच अतीचार—

(१) विना देखे व विना झाड़े मलमूत्र करना व कुछ रखना (२) विना देखे व विना झाड़े उठाना, (३) विना देखे व विना झाड़े चटाई आदि आसन बिछाना, (४) उपवासमें भक्ति न रखना, (५) उपवासके दिन धर्मकार्यको भूल जाना।

(३) भोगोपभोग शिक्षाव्रत—पांच इन्द्रियोंके भोगनेयोग्य पदार्थोंकी संख्या कर लेना। रोज सवेरे २४ घण्टोंके लिये विचार कर लेना कि इतने पदार्थ काममें लूंगा उनसे अधिक न वर्तूंगा। जैसे कपड़े इतने, गहने इतने, भोजन इतने दफे, आज ब्रह्मचर्य है कि नहीं, इत्यादि मर्यादा करनेसे हिंसासे बचा जाता है। जितने पदार्थोंका प्रमाण किया उतने पदार्थोंके सम्बन्धमें हिंसा होगी। सचित्त वस्तुका त्याग करना अर्थात् हरे पत्ते वनस्पतिके खानेका त्याग करना। इस व्रतमें मानव यह भी नियम कर सकता है कि

आज पांच, चार, छः, दो वस्तुएं ही खाऊंगा। भाव हिंसा व द्रव्य हिंसा बचानेका यह उपाय है।

पांच अतीचार—

(१) भूलसे छेदे हुए सचित्तको खा लेना, (२) हरे पत्ते तोड़े हुए पर रक्खी वस्तु खा लेना, (३) छोड़ी हुई सचित्तको अचित्तमें मिलाकर खाना, (४) कामोद्दीपक रस खाना, (५) कच्चा व पक्का पदार्थ व पचनेलायक पदार्थ खाना।

(४) अतिथि संविभाग–साधुओंको या श्रावकोंको दान देकर फिर भोजन करना।

पांच अतीचार—

(१) सचित्तपर रखे हुए पदार्थका देना, (२) सचित्तसे ढके हुए पदार्थका देना, (३) दान आप न देना, दूसरेको कहना तुम दे दो, (४) दूसरे दातारसे ईर्षा करके देना, (५) समयपर न देना देरी लगाना।

व्रत प्रतिमावाला पहलेकी प्रतिमाके भी नियम पालता है। जैसी २ श्रेणी बढ़ती जाती है, पहलेके नियमोंमें आगेके नियम जुड़ते जाते हैं। व्रत प्रतिमावाला मौनसे शुद्ध भोजन करता है।

(३) सामायिक प्रतिमा–सवेरे, दोपहर, शामको दो दो घड़ी सामायिक करना। दो घड़ी ४८ मिनटकी होती है। विशेष कारणसे कुछ कम भी कर सक्ता है। इसके पांच अतीचार टाल कर समभावसे ध्यान करे।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा–अष्टमी, चौदसको अवश्य उपवास करना, धर्मसाधन करना, पांच अतीचार बचाना।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा–इच्छा व राग घटानेको सचित्त भोजन नहीं करना। प्रासुक या पका पानी पीना। सूखे व पक्के फल खाना, बीज न खाना।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा–रात्रिको चार प्रकारका आहार न आप करना, न दूसरेको कराना, खाद्य (जिसमें पेटभर) स्वाद्य (इलायची, पानादि), लेह्य (चाटनेकी चटनी आदि), पेय (पीनेको) यद्यपि इस श्रेणीके पहले भी यथाशक्ति रातको नहीं खाता था, परन्तु वहां अभ्यास था। यहां पक्का नियम होजाता है। न तो आप करता है न कराता है।

रात्रिको वेगिनती कीट पतंगे जो दिनमें विश्राम करते हैं, रातको भोजनकी खोजमें निकल पड़ते हैं, खुशबू पाकर भोजनमें गिरकर प्राण गंवाते हैं। भोजन भी मांस मिश्रित हो जाता है। बहुत प्राणी वध होते हैं। दीपक जलानेमें और अधिक आते हैं। स्वास्थ्यके लिये भी तब ही भोजन करना चाहिये जबतक सूर्यका उदय हो। सूर्यकी किरणोंका असर भोजनके पकानेमें मदद देता है। वास्तवमें १२ घंटेका दिन खानेके लिये बस है। रात्रिको विश्राम लेना चाहिये। दिनमें भोजन करनेसे व रात्रिको न करनेसे कोई निर्बलता नहीं आ सक्ती है। भोजन रात्रिको खूब पकेगा, यदि दिवसमें भोजन किया जावे। गृहस्थीका कर्तव्य ही यह है कि संध्याके बहुत पहले सब घरवाले खा पीकर निश्चिन्त हो जावें।

रात्रिको आराम करे व धर्मसाधन करे ।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—अपनी स्त्रीका सहवास भी त्यागकर ब्रह्मचारी हो जाना, चाहे देशाटन करना, चाहे घरमें रहना, वैराग्य-मय वस्त्र पहनना, सादगीसे रहना, सादा भोजन करना ।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—सातवीं तक आरम्भी हिंसा करता था । यहां आरम्भी हिंसाका भी त्याग करता है । अब यह व्यापारसे धन कमाता नहीं । खेती आदि करता नहीं । घरमें कोई आरम्भ करता कराता नहीं । जो बुलावे जीम आता है, सन्तोषसे रहता है, सवारीपर चढ़ता नहीं, देखकर पैदल चलता है, दूर दूर यात्राका कष्ट नहीं सहता है, आत्मध्यानकी शक्ति बढ़ाता है ।

(९) परिग्रह त्याग—इस श्रेणीमें सर्व सम्पत्तिको त्याग देता है या धर्मकार्योंमें लगा देता है । यहां अवश्य घरको छोड़ता है । किसी धर्मशाला या नशियांमें रहता है । अपने पास मामूली वस्त्र व एक दो बर्तन पानीके लिये रख लेता है । बुलानेसे जाकर शुद्ध भोजन कर लेता है, अहिंसाका विशेष साधन करता है ।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—इस श्रेणीमें श्रावक लौकिक कार्योंमें सम्मति देनेका भी त्याग कर देता है । नौमी तक पूछने पर हानि लाभ बता देता था । अब धर्मकार्योंमें ही सम्मति देता है । भोजनके समय बुलाने पर जाकर संतोषसे भोजन कर देता है ।

(११) उद्दिष्ट त्याग—यहां वही भोजन करता है जो उसके निमित्त बनाया गया हो, किंतु गृहस्थने अपने कुटुम्बके लिये बनाया हो उसमेंसे भिक्षासे जानेपर लेता है बुलानेसे नहीं लेता है । यह

श्रावक क्षुल्लक कहलाता है। एक लंगोट व एक खंड चादर रखता है, जिससे पग ढके तो मस्तक खुला रहे। कम कपड़ा रखनेका मतलब यह है कि शरदी सहनेकी आदत होजावे। एक मोरके पंखकी पींछी रखते हैं, उससे भूमि साफ कर बैठे। मोरके पंखसे छोटासे छोटा प्राणी भी नहीं मरता है। एक कमण्डल रखते हैं उसमें औटा पानी शौचके लिये रखते हैं जो २४ घण्टे नहीं बिगड़ता है। ऐसे क्षुल्लक भिक्षासे जाकर एक घरमें बैठ कर शांतिसे एकवार भोजनपान करते हैं, धर्मध्यान व अहिंसाको विशेष पालते हैं, देख कर चलते हैं। कोई क्षुल्लक एक भोजन करपात्र भी रखते हैं। वे पांच सात घरोंसे भोजन एकत्र कर अंतिम घरमें भोजन कर वर्तन स्वयं साफ कर लेते हैं।

इसके आगे जो साधु होना चाहते हैं वे चादर भी छोड़ देते हैं। केवल एक लंगोट रखते हैं। कमंडल लकड़ीका रखते हैं। भिक्षासे बैठकर हाथमें ही ग्रास दिये जानेपर भोजन करते हैं। यह ऐलक कहलाते हैं। यह हाथोंसे केशोंका लोंच करते हैं। सिरके डाढ़ीके बाल तोड़ डालते हैं। साधुके चारित्रका अभ्यास करते हैं। जब अभ्यास बढ़ जाता है व लज्जाको जीत लेते हैं व ब्रह्मचर्यके पूर्ण अधिकारी हो जाते हैं तब लंगोट त्यागकर निर्ग्रंथ साधु हो जाते हैं और पूर्ण भाव अहिंसा व द्रव्य अहिंसा पालते हैं।

इस तरह एक गृहस्थी अहिंसाके पथपर चलता हुआ पूर्ण अहिंसाका साधन करता हुआ ब्रह्मस्वरूप अहिंसामय हो जाता है।